ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब

(संघर्ष की पृष्ठभूमि)

(स्वामी) अमृत पाल सिंघ 'अमृत'

Title: Khan Abdul Ghaffar Khan Sahib
(Short biography)
Writer: (Swami) Amrit Pal Singh 'Amrit'
Language: Hindi

Email: amritworldnetwork@gmail.com

2 जून, 2025

ISBN Number : 978-93-343-1626-1

Publishers:

Amrit Pal Singh
Shivjot Enclave,
Kharar, Distt S.A.S. Nagar (Mohali),
Punjab (India) - 140301.

विषय सूची

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के महानायक ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब एक ऐसे महामानव थे, जो शताब्दियों तक संघर्षशील लोगों के लिये प्रेरणा-स्रोत बने रहेंगे।

लोक संघर्ष के इस महामानव का जन्म 6 फ़रवरी, 1890 को ब्रिटिश इण्डिया के उतमनज़ई में हुआ, जो अब पाकिस्तान के सूबा ख़ैबर पख़्तूनख़्वा के ज़िला चारसदा में है।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब इंडियन नेशनल काँग्रेस के राष्ट्रीय स्तर के एक बड़े नेता थे, जिन्होंने ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत के ख़िलाफ़ चली लम्बी जद्दोजहद में हिस्सा लिया।

भारत में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब को अहिंसा (non-violence) की उनकी राजनीति के लिए सरहदी गाँधी के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि उन्होने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नेता गान्धी जी के बहुत विश्वासपात्र और क़रीबी सहयोगी के तौर पर सूबा सरहद (नार्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स / North-West Frontier Province) में ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ अहिंसक लहर चलाई थी।

प्यार से लोग उन्हें बादशाह ख़ान या बाचा ख़ान भी कहते थे। सूबा सरहद या नार्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स को अब ख़ैबर पख़्तूनख़्वा कहा जाता है।

जंग-ए-आज़ादी में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब की जद्दोजहद को समझने के लिये यह ज़रूरी है कि उस समय के ब्रिटिश इंडियन और अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक माहौल में सूबा सरहद की स्थिति को जान लिया जाये। यह इस लिये भी ज़रूरी है, ताकि यह समझा जा सके कि ख़ान साहिब ने सदियों तक हिंसक गतिविधियों में लिप्त रहने वाले लोगों के एक बड़े हिस्से को कैसे अहिंसा की राह पर चला कर दिखा दिया।

उस समय के सूबा सरहद की स्थिति को 1947 की स्थिति के साथ मिलाकर अध्ययन करने से यह समझने में भी आसानी होगी कि सूबा सरहद में जनमत- संग्रह (referendum) या पश्तूनिस्तान के मामले पर उस समय के ब्रिटिश इण्डियन हुक्मरानों की बेईमानी के क्या कारण थे।

साथ ही, यह पुराने और आधुनिक अफ़ग़ानिस्तान के सियासी हालात और विदेशी ताक़तों द्वारा वहाँ दिये जा रहे दख़ल को समझने में भी मददगार साबित हो सकता है।

अफ़ग़ानिस्तान और ब्रिटिश हित

रूसी ज़ार की सल्तनत अफ़ग़ानिस्तान की आमु नदी तक फैली हुई थी। आमु नदी एक तरह से रूस और अफ़ग़ानिस्तान की भूगोलिक सीमा थी।

जब इण्डिया की हुकूमत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास थी, उस वक़्त कम्पनी ने अफ़ग़ानिस्तान के अमीर, दोस्त मुहम्मद ख़ान से रूस के ख़िलाफ़ समझौता करना चाहा।

दोस्त मुहम्मद ख़ान ईस्ट इण्डिया कम्पनी से समझौता करने को राज़ी था, लेकिन वह चाहता था कि कम्पनी उसे पेशावर पर दुबारा कब्ज़ा करने में मदद दे, जो पंजाब के सिख सामराज ने 1834 में उससे छीन लिया था।

अंग्रेज़ों को अपनी सीमा पर एक ऐसी बफर स्टेट की आवश्यकता थी, जो उनके और नेपोलियन के हमले के ख़तरे के दरमियान एक दीवार बन कर खड़ी रहे। पंजाब का सिख साम्राज्य अंग्रेज़ों की इस

आवश्यकता को पूरा करता था। इसे देखते हुये ईस्ट इण्डिया कम्पनी 25 अप्रैल, 1809 को ही treaty of Amritsar के नाम से महाराजा रणजीत सिंघ से समझौता कर लिया था।

अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब में से ईस्ट इण्डिया कम्पनी किसी एक को ही चुन सकती थी। उन्होंने पंजाब को चुना। पंजाब पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कब्ज़ा होने का वक़्त अभी नहीं आया था।

उधर दोस्त मुहम्मद ख़ान ने अंग्रेज़ों को डराने के लिये रूसी सफ़ीर (Count Jan Prosper Witkiewicz) को काबुल बुला लिया। Witkiewicz 1837 की क्रिसमस के समय काबुल पहुंचा था।

ऐसी अफवाहें थीं कि रूसी दोस्त मुहम्मद ख़ान को महाराजा रणजीत सिंघ के ख़िलाफ़ मदद देने को राज़ी थे। इससे पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान पर नज़रें जमाये बैठे अंग्रेज़ों की नीन्द उड़ गई।

तब के अँग्रेज़ हों या आज की अमेरिकन या यूरोपियन हुकूमतें, अफ़ग़ानों/पश्तूनों की रूसियों से नज़दीकियों से उन्हें ख़ौफ़-सा तो होता ही है।

लार्ड ऑकलैंड ने दोस्त मुहम्मद को रूसियों से तालमेल करने पर एक ख़त लिखकर धमकाया। दोस्त मुहम्मद ने जंग से बचने के लिये पहले तो अंग्रेज़ों से बातचीत शुरू की, लेकिन फिर अप्रैल, 1838 में उसने ब्रिटिश डिप्लोमेटिक मिशन को अफ़ग़ानिस्तान से बाहर निकाल दिया।

लार्ड ऑकलैंड

अब रूस के हमले के अन्देशे से ख़ौफ़ज़दा लार्ड ऑकलैंड ने अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करके वहाँ अपनी कठपुतली हुकूमत खड़ी करने की सोची।

पंजाब के महाराजा रणजीत सिंघ से थोड़ी फ़ौजी मदद लेकर 1839 में अंग्रेज़ों ने अफ़ग़ानिस्तान पर हमला कर दिया और दोस्त मुहम्मद को हटाकर 7 अगस्त, 1839 को शाह शुजा दुर्रानी को काबुल के तख़्त पर बिठा दिया।

शाह शुजा दुर्रानी

हालांकि महाराजा रणजीत सिंघ की तरफ़ से अंग्रेज़ों की मदद के लिये भेजी गई सिख फ़ौज के दस्ते काबुल की ओर जाते हुये रास्ते में अभी दर्रा ख़ैबर भी पार नहीं कर पाये थे कि 27 जून, 1839 को महाराजा रणजीत सिंघ की लाहौर में मृत्यु हो गई।

शाह शुजा के दुबारा काबुल का हुक्मरान बनने से कुछ महीने पहले ही रूस ने अपने दूत Count Jan Prosper Witkiewicz को काबुल से वापिस बुला लिया था। Witkiewicz 1 मई, 1839 को सेंट पीटर्सबर्ग पहुंच चुका था।

शाह शुजा को ज़्यादा समय तक काबुल पर हुकूमत करने का अवसर नहीं मिल पाया। 1841 और 1842 में अफ़ग़ानों ने बग़ावत कर दी। 5 अप्रैल, 1842 को शाह शुजा की हत्या कर दी गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फ़ौज के इण्डियन यूनिट्स और अँग्रेज़ फ़ौजियों के ख़ौफ़नाक ख़ून-ख़राबे के बाद 1843 में दोस्त मुहम्मद ख़ान फिर से काबुल की गद्दी पर बैठ गया।

इस पहली अँग्रेज़-अफ़ग़ान जंग में अंग्रेज़ों की इतनी खौफ़नाक हार हुई थी कि जब तक वह इण्डिया में रहे, वह उस ख़ून ख़राबे को कभी भूल नहीं पाए। अफ़ग़ानों/पश्तूनों से हमेशा डरे रहने, उन पर हमेशा शक़ करते रहने, और उनको सख़्ती से दबाकर रखने की उनकी कोशिशों की वजह ख़ास तौर पर पहली अँग्रेज़-अफ़ग़ान जंग से हासिल उनके बुरे अनुभव ही थे।

मुल्तान के गवर्नर दीवान मूलराज (चोपड़ा) के असफल विद्रोह के बाद, 1849 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने महाराजा दलीप सिंघ को पेंशन देकर सत्ताच्युत कर दिया और पंजाब को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार वाले इण्डिया में मिला लिया। उसके बाद, 1857 के विद्रोह के बाद इण्डिया का कन्ट्रोल सीधा ब्रिटिश क्राउन के पास ही चला गया।

13 जुलाई, 1878 को ऑस्ट्रिया-हंगरी, फ़्रांस, जर्मनी, ग्रेट ब्रिटन, इटली, रूस, और ओट्टोमन साम्राज्य में एक शान्ति समझौता हो गया, जिसको 'ट्रीटी ऑफ बर्लिन' कहा जाता है। रूस के इस समझौते में शामिल होने की वजह से ब्रिटिश हुकूमत को अब अपनी इण्डियन कॉलोनी, यानि ब्रिटिश इण्डिया पर रूस के हमले का डर ख़त्म हो गया था।

उसी साल, यानि 1878 में ही अंग्रेज़ी इण्डियन हुकूमत ने अफ़ग़ानिस्तान पर दूसरा हमला किया। उस वक़्त अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह (अमीर) शेर अली ख़ान था।

शेर अली ख़ान ने इस ब्रिटिश हमले के ख़िलाफ़ रूस की मदद लेने की कोशिश तो की, पर इस में वह असफल ही रहा। जल्द ही, 1879 में शेर अली की मौत हो गई, जिसके बाद उसके बेटे मुहम्मद याक़ूब ख़ान ने सत्ता संभाली और फिर अंग्रेज़ों से समझौता कर लिया।

इस समझौते के तहत अंग्रेज़ों को ख़ैबर दर्रे तक का कंट्रोल मिल गया। क्वेटा समेत कई इलाके भी अंग्रेज़ों को मिल गये। अफ़ग़ानिस्तान के विदेशी मामलों को देखने का ज़िम्मा भी अंग्रेज़ों के पास आ गया।

लेकिन उसी साल काबुल में एक बग़ावत उठी और वहाँ ब्रिटिश प्रतिनिधि को उसके स्टाफ़ समेत क़त्ल कर दिया गया। इससे दूसरी अफ़ग़ान-ब्रिटिश जंग का दूसरा दौर शुरू हो गया।

दूसरी जंग के इस दूसरे दौर में अंग्रेज़ों ने अब्दुर रहमान ख़ान को अफ़ग़ानिस्तान का हुक्मरान बना दिया।

अब स्थिति यह थी कि अंग्रेज़ों की इण्डियन कॉलोनी और रूस के बीच अफ़ग़ानिस्तान एक बफर स्टेट था। अंग्रेज़ों को लगता था कि रूस और ब्रिटिश इण्डिया के दरमियान उनके प्रभाव वाला अफ़ग़ानिस्तान एक सुरक्षा दीवार की तरह काम कर रहा था।

अब्दुर रहमान ख़ान के वक़्त ही 1893 में डुरंड लाइन का समझौता हुआ। यही डुरंड लाइन आज तक भी अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान के बीच तनाव की वजह बनी हुई है।

31 अगस्त, 1907 को सेंट पीटर्सबर्ग में यूनाइटेड किंगडम और रूस ने एंग्लो-रशियन कन्वेंशन पर दस्तख़त किये। इसमें रूस ने अफ़ग़ानिस्तान पर अँग्रेज़ी हुकूमत के प्रभाव को मान्यता दे दी। इससे अँग्रेज़ी हुकूमत अब ख़ुद को इण्डिया में पहले की तुलना में ज़्यादा सुरक्षित मानने लगी थी।

रूस में कम्युनिस्ट क्रान्ति

28 जुलाई, 1914 को पहली संसार जंग शुरू हुई, जो 11 नवम्बर, 1918 तक चली। इसी संसार जंग के चलते ही रूस की आर्थिक, राजनीतिक, और सामाजिक हालत ख़राब हो गयी। मार्च 1917 में रूस की पहली क्रान्ति हुई और इस तरह ज़ार निकोलस का राज ख़त्म हो गया।

अक्टूबर, नवम्बर 1917 के दूसरे रूसी इंक़लाब के बाद रूस ख़ानाजंगी का शिकार बन गया।

इधर अंग्रेज़ों की अफ़ग़ानों से तीसरी जंग 1919 में हुई। यह जंग अगस्त, 1919 में ख़त्म हुई। इससे अफ़ग़ानिस्तान पूरी तरह से अंग्रेज़ी नियंत्रण से मुक्त हो गया। अब अफ़ग़ानिस्तान अपनी विदेश नीति भी ख़ुद तय करने के लिये स्वतंत्र था।

अंग्रेज़ों को फ़ायदा यह हुआ कि उनकी खींची डुरंड लाइन को अफ़ग़ानिस्तान हुकूमत से दुबारा पक्की मान्यता मिल गयी थी। अब यह पक्के तौर पर तय हो गया था कि डुरंड लाइन अफ़ग़ानिस्तान और ब्रिटिश इण्डिया की सरहद थी।

अक्टूबर, नवम्बर 1917 के दूसरे रूसी इंक़लाब के बाद रूस ख़ानाजंगी का शिकार बन गया। यह ख़ानाजंगी 1922 तक चलती रही, जब सोवियत संघ बन गया।

सोवियत संघ के ख़िलाफ़ सेन्ट्रल एशिया में किसी न किसी तरह से बग़ावत 1934 तक चलती रही। सेन्ट्रल एशिया के कुछ मुसलमान गुटों को अंग्रेज़ों समेत दूसरे देशों से सोवियत संघ के ख़िलाफ़ बग़ावत के लिये मदद मिलती रही थी। 1934 आते-आते सोवियत संघ ने ऐसी बग़ावतों पर क़ाबू पा लिया।

इण्डिया पर काबिज़ अंग्रेज़ों के लिये अब अफ़ग़ानिस्तान की आमु नदी महज़ एक भौगोलिक सरहद न रहकर एक विचारधारक सरहद भी बन गयी। आमू के उस पार कम्युनिस्ट विचारधारा की हुकूमत थी और आमू के इस पर कम्युनिस्ट विचारधारा के विरोधियों का शासन था।

सामराजी ब्रिटिश हुकूमत का कम्युनिस्ट विचारधारा से गहरा टकराव स्वाभाविक ही था।

जैसे भौगोलिक सरहद की हिफ़ाज़त के लिये किसी कण्टीली तार या दीवार की ज़रुरत होती है, वैसी ही ज़रूरत ब्रिटिश हुकूमत को कम्युनिस्ट विचारधारा के ख़िलाफ़ विचारधारक सरहद की हिफ़ाज़त के लिये भी महसूस हुई।

सामराजी निज़ाम और कम्युनिस्ट निज़ाम के दरमियान ब्रिटिश हुकूमत को एक मज़बूत विचारधारक दीवार की सख़्त ज़रूरत थी। और यह विचारधारक दीवार कम्युनिस्ट विचारधारा के सख़्त ख़िलाफ़ होनी चाहिये थी।

नार्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स

महाराजा रणजीत सिंघ के समय में पेशावर, डेरा इस्माइल ख़ान, और हज़ारा अलग - अलग प्रान्त थे। किसी समय पेशावर और डेरा

इस्माइल ख़ान अफ़ग़ानिस्तान का हिस्सा हुया करते थे। पेशावर तो अफ़ग़ानिस्तान की दूसरी राजधानी हुया करती थी।

1848 में हुई कथित दूसरी एंग्लो - सिख जंग के बाद महाराजा दलीप सिंघ को गद्दी से उतार दिया गया और उन का राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा शासित ब्रिटिश इण्डिया में शामिल कर लिया गया।

1901 में ब्रिटिश इण्डियन सरकार ने पेशावर समेत पश्तून इलाक़ों को मिलाकर नार्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स का गठन कर दिया। पुराने प्रान्त हज़ारा को भी इस नये सूबे नार्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स में एक ज़िले के तौर पर शामिल कर दिया गया।

इस नार्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स को स्थानक लोग सरहदी सूबा या सूबा सरहद कहने लगे। आम बोलचाल में इसको सिर्फ़ सरहद या फ्रंटियर भी कह देते थे। यहाँ के लोगों को सरहदी कहा जाता था।

अफ़ग़ानिस्तान हाथों से निकल जाने की वजह से अब अंग्रेज़ों को कम्युनिस्ट रूस, यानी सोवियत संघ के ख़तरे का सामना करना पड़ रहा था। अंग्रेज़ों को यह आशंका थी कि अफ़ग़ानिस्तान से होते हुये रूस ब्रिटिश इण्डिया पर हमला कर सकता था। ऐसे हालात में यह ज़रूरी था कि अफ़ग़ानिस्तान के साथ लगता ब्रिटिश इण्डिया का इलाक़ा पूरी तरह से ब्रिटिश हुकूमत के कन्ट्रोल में हो। इसके लिये अँग्रेज़ कुछ भी करने के लिये तैयार थे।

चाहे डुरंड लाइन ब्रिटिश इण्डिया और अफ़ग़ानिस्तान की पक्की सरहद हो गयी, पर इससे डुरंड लाइन के इस तरफ़, यानी क़बायली इलाक़ों और सूबा सरहद में पश्तूनों में बेचैनी बढ़ने लगी। डुरंड लाइन ने पश्तून क़ौम को दो हिस्सों में बाँट दिया था। कुछ रिश्तेदार डुरंड लाइन के उस तरफ़ रह गये और कुछ इस तरफ़।

तीसरी अँग्रेज़-अफ़ग़ान जंग में पीछे हटते वक़्त अफ़ग़ानिस्तान की फ़ौज बहुत से हथियार और असलाह डुरंड लाइन से इधर ही छोड़ गई थी। ये सभी हथियार और असलाह इधर के पश्तूनों के कब्ज़े में आ गये। अब ये पश्तून भी बहुत अच्छी तरह से हथियारबन्द हो चुके थे। अफ़ग़ानिस्तान की फ़ौज का साथ देने आये कई मिलिशिया गुट भी क़बायली इलाक़ों और फ़्रंटियर प्रोविन्स के पश्तूनों से जुड़ गये।

इन्होंने क़बायली इलाक़ों और फ़्रंटियर प्रोविन्स में ब्रिटिश सरकार के लिये मुसीबतें खड़ी कर दीं थीं। पठानों की इस बग़ावत से ब्रिटिश हुकूमत बहुत परेशान थी। इनको कुचलने के लिये ब्रिटिश हुकूमत ने हर किस्म के ज़ुल्म का इस्तेमाल किया। वह किसी भी तरीके से इनको कुचलना चाहती थी।

हज़ारा पर चाहे अंग्रेज़ों का कब्ज़ा था, लेकिन यहाँ के कई पश्तून क़बीले भी हथियारबन्द बग़ावत करते रहते थे। इनमें नंधिआर वैली में आजकल के ज़िला बटाग्राम के पश्तून, और ब्लैक माउंटेन यानी तोर ग़र के यूसफ़ज़ई पश्तून शामिल थे। इनके द्वारा की गई बग़ावतों को दबाने के लिये ब्रिटिश हुकूमत ने 1852 से 1920’s के दरमियान कई बार फ़ौजी कार्रवाइयाँ कीं।

ख़ुदाई ख़िदमतगार

जब कई पश्तून क़बीले हथियारबन्द बग़ावत से अंग्रेज़ों की नाक में दम किये हुये थे, बिल्कुल उसी समय नॉर्थवेस्ट फ़्रंटियर प्रोविंस में पश्तूनों/अफ़ग़ानों में सामाजिक सुधार करने के लिये ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के नेतृत्व में एक अमनपसंद तहरीक शुरू की गई, जिसको अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-अफ़ग़ानिया कहा जाता था। ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब को लोग प्यार से बादशाह ख़ान या बाचा ख़ान कहते थे।

पश्तूनों में होने वाली आपसी ख़ूनी जंगों को बन्द करने के लिये अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-अफ़ग़ानिया ने बहुत अच्छी कोशिशें कीं। उन्होने शायरी, लिटरेचर, और संगीत के लिए लोगों को उत्साहित किया। अहिंसा को अपना ख़ास हथियार बनाया गया। मुसलमानों में मज़हबी मतभेद दूर करने के लिये भी इन्होंने काफ़ी कोशिशें कीं।

उस दौर में सूबा सरहद पढ़ाई के मामले में बहुत पीछे था। अगर कहीं कोई स्कूल खोला भी जाता था, तो कुछ मुल्ला लोगों को स्कूल न जाने के लिये कहते रहते थे। ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने 1910 में पहला स्कूल खोला। उसके बाद कई और गांवें में स्कूल खोले गये। लड़कियों को तालीम देने के लिये भी ख़ास कोशिशें की गईं। इन स्कूलों में पढ़ने वालों को ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ अहिंसक तरीक़े से बग़ावत करने के लिये प्रेरणा दी जाती थी। स्वाभाविक ही था कि ब्रिटिश हुक्मरान इनको अपना दुश्मन समझने लग गये।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने 1927 में किसानों के लिये अंजुमन-ए-ज़िमीदारां के नाम से एक ग्रुप शुरू किया। पश्तून नौजवानों में चेतना पैदा करने के लिये उन्होंने पश्तून जिरगा की भी शुरुआत की।

शादी-विवाहों में किए जाने वाले फ़िज़ूलख़र्च को रोकने के लिये ख़ान साहिब ने लोगों को प्रेरणा दी। शादी में बुलाये जाने वाले व्यवसायक नाचने वालों से लोगों को हटाया गया, ताकि शादी में ख़र्च कम हो। वेश्यवृति का विरोध किया गया।

अँग्रेज़ी सामान का बहिष्कार कर के देसी सामान ख़रीदने के लिये मुहिम चलायी गई।

अंजुमन-ए-इस्लाह-ए-अफ़ग़ानिया चाहती थी कि सरकार उनके गाँवे में शराब की दुकानें न खोले। शराब की जो दुकानें खुल चुकी थीं, उनको वे बन्द कराना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे शराबी बनें।

अंग्रेजों को तीन अफ़ग़ान जंगों का बहुत बुरा तजुरबा था। फ़्रंटियर प्रोविन्स और क़बाइली इलाक़ों में बार-बार उठती बग़ावतों ने भी उन्हें बहुत परेशान कर रखा था। ऐसे में उन्होंने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के नेतृत्व में चलती पूरी तरह अमनपसन्द तहरीक को भी अपने लिये बहुत बड़ा ख़तरा समझा। चाहे यह अमनपसन्द ही थी, पर थी तो ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ ही।

इसलिये ख़ान साहिब के नेतृत्व में चलती इस तहरीक को ब्रिटिश हुकूमत ने सख़्ती से दबाना शुरू किया। 1930 तक इस तहरीक के कई रहनुमाओं को फ़्रंटियर प्रोविन्स से बाहर निकाल दिया गया। कई लोगों को गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया गया।

सूबा सरहद में ब्रिटिश अफ़सरों ने ज़ुल्म का ऐसा सिलसिला शुरू किया, जिसका पूरी तरह से ज़िक्र करना नामुमकिन है।

ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ नारे लगाते निहत्थे पठानों को मार-मारकर उनकी चमड़ी उधेड़ दी जाती, लेकिन वे चुप नहीं करते और नारे लगाते ही रहते। उनको अपमानित करने के लिये उनकी दाड़ियाँ शेव कर दी जातीं।

उनको जेलों में डालकर सख़्त से सख़्त तसीहे दिये गये। उनको सख़्त सर्दी के दिनों में तालाबों या नदियों में फेंक दिया जाता। हज़ारा ज़िले में हरीपुर जेल में कितने ही ख़ुदाई ख़िदमतगार शहीद हो गये। उनके घर उजड़ गये। उनके बच्चे यतीम हो गये।

ख़ुदाई ख़िदमतगार

लेकिन यह पठान न झुकने वाले थे, न झुके। इन्होंने अहिंसा का दामन नहीं छोड़ा और मर्दों की तरह ब्रिटिश इंडियन हुकूमत के ज़ुल्मों का सामना करते रहे।

वक़्त के साथ-साथ यह सामाजिक तंज़ीम सियासी रूप लेने लगी, जो 1929-1930 तक ख़ुदाई-ख़िदमतगार की शक्ल में सामने आई। ख़ुदाई ख़िदमतगार का मतलब होता है, ख़ुदा के ख़िदमतगार, भगवान के सेवक। ख़ुदा की ख़िदमत का मतलब ख़ुदा की ख़ल्कत की ख़िदमत ही होता है। ख़ुदाई-ख़िदमतगार तंजीम ने पश्तून समाज पर लम्बे वक़्त के लिये अपनी गहरी छाप छोड़ी, जिसका असर भी उस पुराने सूबा सरहद में देखा जाता है, जिसको अब ख़ैबर पख़्तूनख़्वा कहा जाता है।

क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार हत्याकांड

23 अप्रैल, 1930 को उतमनज़ई में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने एक मीटिंग को सम्बोधन किया। उन्होंने लोगों को कहा कि ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ जद्दोजहद की जाये। उनका विरोध किया जाये। उनके इस भाषण के बाद उनको गिरफ़्तार कर लिया गया।

उसी दिन नार्थवेस्ट फ़्रंटियर प्रोविन्स (सूबा सरहद) में कई जगहों पर मुज़ाहरे हुये। पेशावर के क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार में एक बहुत बड़ी भीड़ मुज़ाहरे में शामिल होने के लिये इकट्ठा हुई।

मुज़ाहरा रोकने के लिये वहाँ ब्रिटिश इण्डियन फ़ौजी बुला लिये गये। भड़की हुई एक भीड़ ने वहाँ एक ब्रिटिश डिस्पैच राइडर को क़त्ल कर दिया और उसकी लाश को आग लगा दी। इसके जवाब में फ़ौज ने दो फ़ौजी गाड़ियाँ लोगों पर चढ़ा दीं, जिससे कुचलकर कुछ लोग मारे गये।

अहिंसा की नीति पर चलने वाले निहत्थे ख़ुदाई ख़िदमतगार प्रदर्शनकारी वहीं बैठे रहे और ब्रिटिश इण्डियन फ़ौजियों से पीछे हटने की माँग करने लगे, ताकि वे मारे गये लोगों की लाशें उठा सकें और ज़ख़्मी लोगों को संभाल सकें।

ब्रिटिश इण्डियन फ़ौजियों ने पीछे हटने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर ख़ुदाई ख़िदमतगार भी वहीं डटे रहे।

जब ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने वहाँ पड़ी लाशों को उठाने और ज़ख़्मी लोगों को सम्भालने की कोशिश की, तो ब्रिटिश फ़ौजी अफ़सरों ने उन निहत्थे ख़िदमतगारों पर गोलियां चलाने का हुक्म दे दिया।

गोलियां चलने से आगे की पंक्ति के कुछ ख़ुदाई ख़िदमतगार शहीद हो गये।

अपने साथियों को शहीद हुये देख उनके पीछे वाले ख़ुदाई ख़िदमतगार उठे और आगे बढ़े। फ़ौजियों ने उनपर भी गोलियां बरसा दी। बुलन्द आवाज़ में 'अल्लाह हु अकबर' के नारे लगाते हुये वे निहत्थे ख़ुदाई ख़िदमतगार वहीं जाम-ए-शहादत पी गये।

इसके बाद एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा ख़ुदाई ख़िदमतगार आगे आकर बेख़ौफ़ होकर ऊँची आवाज़ में 'अल्लाह हु अकबर' बोलता गया, अपने सीने पर गोलियां खाता गया, और शहीद होता गया।

कई ख़ुदाई ख़िदमतगार अपने हाथ में क़ुरान मजीद पकड़ कर आगे बढ़ते और फ़ौजियों के सामने अपना सीना तानकर बुलन्द आवाज़ में 'अल्लाह हु अकबर' बोलते थे। चलती गोलियों के सामने उनके पैर थोड़ा-सा भी नहीं काँपते थे। हाथ में क़ुरान थामे, 'अल्लाह हु अकबर' के नारे लगाते ये पश्तून पेशावर के क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार में शहीद होते गये।

गोली लगने से नीचे गिरकर ये पश्तून फिर खड़े होते। उनको फिर और गोलियाँ लगतीं। इस तरह उनको कई गोलियाँ लगतीं थीं। कई शहीद ऐसे थे, जिनको बीस-इक्कीस तक गोलियाँ भी लगी थीं।

कई पश्तून गोलियां लगने से बुरी तरह से ज़ख़्मी हो जाते और फिर उठ नहीं पाते थे। उनके पीछे बैठे दूसरे पश्तून उनको खींचकर पीछे कर देते और ख़ुद खड़े होकर फ़ौजियों के आगे अपना सीना तान देते।

न ये बेख़ौफ़ पश्तून आगे आने से हटे, न ब्रिटिश इण्डियन फ़ौजियों की गोलियां रुकीं।

वहाँ किसी तरह की कोई भगदड़ नहीं मची। ख़ुदाई ख़िदमतगार आराम से और तरतीब से आगे बढ़ते, गोलियों का सामना करते, और नीचे गिरते जाते। जो ज़ख़्मी हो जाते, उनको बिना कोई भगदड़ मचाये अपने पीछे करके कोई और पश्तून अपना सीना तानकर खड़ा हो जाता।

दिन में 11 बजे शुरू हुआ शहादतों का यह दौर शाम पाँच बजे तक चला।

निश्चित तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि कुल कितने लोग शहीद हुये। सरकार ने इस घटना से जुड़ी हर बात को दबाने की कोशिश की। सरकार ने महज़ बीस लोगों की मौत की बात ही मानी। ग़ैरसरकारी अनुमानों के मुताबिक़ शहीदों की तादाद ढाई सौ से लेकर चार सौ तक थी।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर अंग्रेज़ी ज़ुल्म की दास्तान सिर्फ़ इतनी ही नहीं है। सूबा सरहद में कई जगहों पर ख़ुदाई ख़िदमतगारों को अंग्रेज़ी हुकूमत के ज़ुल्मों का शिकार होना पड़ा। जगह-जगह उनपर गोलियां चलाई गयीं। उनके गाँवें पर बमों से हमले तक हुये। ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर पेशावर और आसपास के इलाके में सबसे ज़्यादा ज़ुल्म हुआ। न सिर्फ सूबा सरहद, बल्कि कबायली इलाकों में भी पश्तून लोगों पर बेइंतेहा ज़ुल्म किये गये। जैसे, वज़ीरिस्तान में ऐसी ही एक कार्रवाई में 60 से ज़्यादा लोगों का कत्लेआम कर दिया गया था।

ब्रिटिश इंडियन फ़ौजी किसी भी गाँव को घेर लेते और लोगों का आना-जाना बन्द कर देते। फ़ौज का घेरा कई बार बहुत लम्बे वक़्त तक चलता। घेरे में आये गाँव के लोगों और उनके जानवरों के भूखे मरने की नौबत आ जाती।

अमनपसन्द इन पश्तून मुसलमानों पर अंग्रेज़ी हुकूमत के ग़ैर-इन्सानी ज़ुल्मों ने उन्हे ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत का पक्का दुश्मन बना दिया।

इण्डियन नेशनल काँग्रेस से सहयोग

ब्रिटिश हुकूमत के ग़ैर-इंसानी ज़ुल्मों का लगातार शिकार बन रहे ख़ुदाई ख़िदमतगारों को भारत की दूसरी सियासी पार्टियों की हिमायत की ज़रूरत महसूस हुई, ताकि ख़ुदाई ख़िदमतगारों को सरकारी ज़ुल्म से बचाया जा सके। इसके लिये इन्होंने भारत में दूसरी सियासी पार्टियों से राब्ता करने का फ़ैसला किया।

ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने अपने लोगों से कहा कि भारत में कई मुसलमान नवाब हैं। भोपाल के नवाब हाफ़िज़ मुहम्मद हमीदुल्ला ख़ान बहादुर पश्तून हैं। रामपुर के नवाब सईद मुहम्मद रज़ा अली ख़ान बहादुर हैं। उनसे मिलो। उनको बताओ कि हमारे साथ क्या हो रहा है। उनसे कहो कि हमारी मदद करो। कम-अज़-कम हम पर हो रहे ज़ुल्म की बात तो करो।

किसी भी नवाब ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब की मदद करने की हामी नहीं भरी। वे सभी ख़ुद ही अंग्रेज़ों की हिफ़ाज़त में रहकर जी रहे थे। उन्होंने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ ख़ुदाई ख़िदमतगारों की क्या मदद करनी थी?

पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी ऐसे ज़िमीदारों की पार्टी थी, जिनको ब्रिटिश हुकूमत की सरपरस्ती हासिल थी। यूनियनिस्ट पार्टी के नेता ज़्यादातर ऐसे लोग थे, जिनकी सेवा से ख़ुश होकर ब्रिटिश हुकूमत ने उनको 'सर' का ख़िताब दिया हुआ था। ख़ुदाई ख़िदमतगारों की तरफ़ से यूनियनिस्ट पार्टी से सम्पर्क किया गया। यूनियनिस्ट पार्टी ने ख़ुदाई ख़िदमतगारों से दूरी बनाये रखना ही बेहतर समझा।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों की तरफ़ से आल इण्डिया मुस्लिम लीग से राब्ता भी किया गया। मुस्लिम लीग भी अंग्रेज़-परस्त तनज़ीम थी। उसने भी ख़ुदाई ख़िदमतगारों की कोई मदद नहीं की।

इसके बाद ख़ुदाई ख़िदमतगारों की तरफ़ से इण्डियन नेशनल काँग्रेस से राब्ता किया गया। गान्धी जी ने ख़ुदाई ख़िदमतगार तनज़ीम के लिये हमदर्दी दिखाई, लेकिन गान्धी जी ने उन्हें कहा कि उनको कांग्रेस पार्टी से जुड़ना होगा।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने जब गान्धी जी की यह बात ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब को बताई, तो उन्होंने काँग्रेस से जुड़ने के लिये फ़ौरन सहमति दे दी।
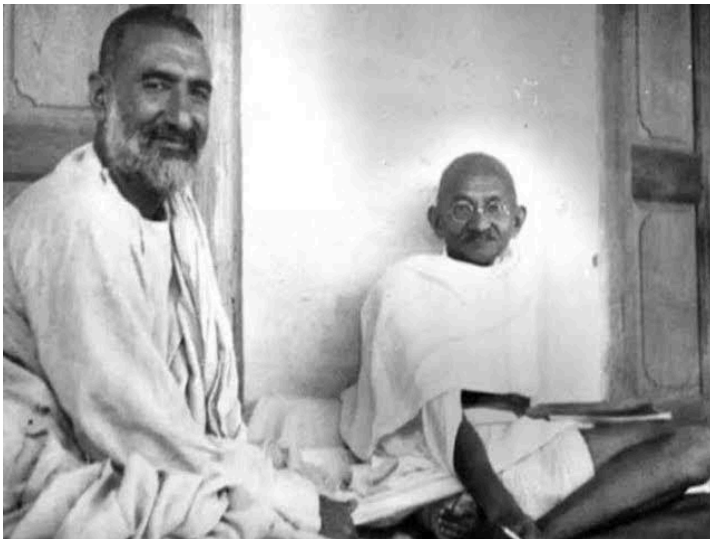
गांधी जी के साथ ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब

यह वह दौर था, जब मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, और अकाली दल के सदस्यों को काँग्रेस का सदस्य बनने की भी इजाज़त हुआ करती थी। कोई व्यक्ति एक ही वक़्त मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, या अकाली दल का सदस्य होने के साथ-साथ इण्डियन नेशनल काँग्रेस का सदस्य भी हो सकता था। बिल्कुल इसी तरह, जो पश्तून ख़ुदाई ख़िदमतगार थे, वे काँग्रेस के भी सदस्य बन गये।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों के काँग्रेस सदस्य बनते ही ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर हुये ब्रिटिश हुकूमत के ज़ुल्मों की तहकीकात के लिये गान्धी जी ने सरदार वल्लभभाई पटेल के अधीन एक जाँच समिति फ्रंटियर प्रोविन्स के लिये भेज दी।

पटेल को सूबा सरहद के प्रशासन ने सूबे के अन्दर ही नहीं दाख़िल होने दिया। काँग्रेस की यह जाँच समिति पंजाब में ही रुकी रही।

पठानों ने सोचा कि अगर काँग्रेस की जाँच समिति को फ्रंटियर प्रोविन्स में दाख़िल होने की इजाज़त नहीं है, तो क्या हुआ? पठान तो ख़ुद चल कर काँग्रेस की इस जाँच समिति के पास पंजाब में जा सकते हैं।

तो ख़ुदाई ख़िदमतगार अपने उन पश्तूनों को जाँच समिति के पास ले आये, जिन पर ब्रिटिश हुकूमत ने ग़ैर-इन्सानी तशद्दुद किये थे। ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर हुये ज़ुल्मों के बारे में काँग्रेस ने देश भर में प्रचार किया। इससे पूरे भारत में ही कोहराम मच गया।

दबाव में आकर सरकार ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब समेत दूसरे ख़ुदाई ख़िदमतगारों को रिहा कर दिया और इनकी तहरीक पर लगाई बन्दिशें हटा लीं।

इसके बाद ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब गान्धी जी के बहुत नज़दीक हो गये। नॉन-वायलेंस या अहिँसा की नीति की वजह से

ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब को 'सरहदी गान्धी' कहा जाने लगा। सूबा सरहद में रहने वाले आदमी को सरहदी कहा जाता था। इसलिये सूबा सरहद के रहने वाले ख़ान साहिब को सरहदी गान्धी कहा जाने लगा।

काँग्रेस के साथ मिलकर ब्रिटिश इंडियन हुकूमत के ख़िलाफ़ जद्दोजहद करने से ख़ुदाई ख़िदमतगारों के इतिहास का एक नया दौर शुरू होता है।

ख़ुदाईख़िदमतगारों पर सख़्ती की वजह

सूबा सरहद और इसके साथ लगते क़बायली इलाके अफ़ग़ानिस्तान की सरहद के साथ होने की वजह से यहाँ के हालात पर अँग्रेज़ी इण्डियन हुकूमत की पैनी नज़र रहती थी। यहाँ ख़ुदाई ख़िदमतगार तहरीक अंग्रेज़ों के लिये बड़ी सिरदर्दी थी।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों से अंग्रेज़ों को हमेशा से ही ख़ौफ़ रहा था। ये पक्के मुसलमान थे। कई जगहों पर मदरसे चलाते थे। हिन्दुओं और सिखों के सच्चे दोस्त थे। और, सूबा सरहद में अंग्रेज़ों के सबसे बड़े दुश्मन भी यही थे।

दो अफ़ग़ान जंगों के बाद पेशावर समेत पश्तून इलाक़ों में हालात ऐसे थे कि अंग्रेज़ अफ़सरों और ईसाई मिशनरीज़ को हमेशा ही अपनी जान का ख़तरा बना रहता था।

ऐसे बहुत पश्तून थे, जो अपनी ज़मीन पर हुक्मरान बने बैठे इन अंग्रेज़ों को बहुत नफ़रत करते थे।

अपनी ज़मीन पर वे ग़ैर-मुल्क़ी अफ़सरों को देखते। इससे उनको अहसास होता कि वे अपने ही मुल्क़ में ग़ुलाम बन गये हैं। पश्तून

वैसे भी एक आज़ादी-पसन्द क़ौम हैं। उनको किसी की भी सियासी ग़ुलामी पसन्द नहीं।

जब वे अपने इलाके में ग़ैर-मुल्क़ी ईसाई मिशनरीज़ को देखते, तो उनको लगता कि उनका मज़हब ख़तरे में है। मौलवी भी लोगों को ईसाई मिशनरीज़ के ख़िलाफ़ भड़काते रहते थे।

इससे ऐसे हालात बन गये कि कोई न कोई पश्तून ऐसे मौके की तलाश में रहता था, जब वह किसी अंग्रेज़ अफ़सर या मिशनरी को क़त्ल कर सके। इसके पीछे जिहाद का जज़्बा भी था।

बीसवीं सदी के शुरू तक भी हालात कुछ ज़्यादा नहीं बदले थे। तीसरी अफ़ग़ान जंग के बाद तो नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स और क़बायली इलाक़ों में अंग्रेज़ों के लिये ख़तरा और बढ़ गया था।

तोरग़र के इलाके में दो अंग्रेज़ अफ़सरों के क़त्लों के बाद 1852 में कर्नल फ्रेडरिक मेकसन ने वहाँ पश्तून क़बीलों पर हमले किये थे।

फ्रेडरिक मेकसन के हमलों की वजह से उस के ख़िलाफ़ एक फ़तवा जारी किया गया।

10 सितम्बर, 1853 को स्वात के इलाके के एक क़बायली पश्तून ने कर्नल फ्रेडरिक मेकसन पर उसके बंगले में छुरे से हमला किया। चार दिन बाद 14 सितम्बर को फ्रेडरिक मेकसन की मौत हो गयी। उस क़बायली पश्तून ने कहा कि उसने वह क़त्ल इसलिये किया था, ताकि अँग्रेज़ उसके इलाके पर हमला न करें।

फ्रेडरिक मेकसन के ख़िलाफ़ जारी किये गये फ़तवे की वजह से ही उसका क़त्ल किया गया था।

क़ातिल को एक अक्टूबर, 1853 को फाँसी पर लटका दिया गया। उसकी लाश को जलाकर उसकी राख को दरिया में बहा दिया गया।

पश्तून इलाके के पेशावर से ही एक सीक्रेट सप्लाई रुट बिहार में पटना तक बनाया गया था, जिसके ज़रिये 1857 की बग़ावत के दौरान बाग़िओं को सप्लाई की गई थी। तब से इन इलाके के पश्तूनों पर अँग्रेज़ नज़र रखते थे।

ख़िलाफ़त आन्दोलन में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने हिस्सा लिया था। ख़िलाफ़त आन्दोलन अंग्रेज़ों के ही ख़िलाफ़ था। इस वजह से भी वह अंग्रेज़ों की नज़रों में थे।

19वीं सदी से ही अंग्रेज़ों की पॉलिसी यह रही थी कि रूस को सेंट्रल एशिया और भारतीय सब-कॉन्टिनेंट में और फैलने से रोका जाये। इसके लिये जरूरी था कि अफ़ग़ानिस्तान और ब्रिटिश इण्डिया के नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर में अंग्रेज़ों का पूरा कंट्रोल हो। 1919 की तीसरी अफ़ग़ान जंग के बाद अंग्रेज़ों का पूरा ज़ोर नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स और क़बायली इलाक़ों के कन्ट्रोल पर ही था। यहाँ वे किसी भी तरह की बदअमनी और बग़ावत नहीं चाहते थे, चाहे इसके लिये कितने भी सख़्त क़दम उठाने पड़ें।

1857 के बाद उस वक़्त तो अंग्रेज़ों को लगा कि बग़ावत को उन्होंने सख़्ती से दबा दिया है, लेकिन नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर में ऐसी बग़ावतें उसके बाद भी बार-बार उठती रहीं, जिससे अंग्रेज़ों को बहुत बड़ी दिक्कत रही।

1863, 1919 और उसके बाद तक भी में नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर पर अंग्रेज़ों को पश्तूनों की बग़ावतों को दबाने के लिये कड़ी मुश्क़त करनी पड़ी थी।

सईद अहमद रायबरेलवी ने हिन्दोस्तान में कई जगहों पर घूम-फिर कर जिहाद का प्रचार किया था। उनकी मौत 1831 में पंजाब के ख़ालसा राज के ख़िलाफ़ जिहाद करते हुये ही मैदान-ए-जंग में हज़ारा के बालाकोट में हुई थी। पश्तूनों में सईद अहमद के पैरोकारों की काफ़ी तादाद थी। उनकी मौत भी सूबा सरहद (आज के ख़ैबर पख़्तूनख़्वा) में ही हुई थी। सूबा सरहद में उनके असर की वजह से अंग्रेज़ सूबा सरहद के पश्तूनों पर सख़्त नज़र रखते थे।

1872 में पोर्ट ब्लेयर में लार्ड मायो का क़त्ल करने वाला शेर अली ख़ान अफ़रीदी भी क़बायली इलाके में तीराह वैली से ताल्लुक़ रखता था। यह भी एक वजह थी कि अँग्रेज़ क़बायली इलाक़ों पर नज़र रखते थे।

पहले रूसी ज़ार का और फिर कम्युनिस्ट सोवियत संघ की तरफ़ से ब्रिटिश इण्डिया पर हमले का अंग्रेज़ों को हमेशा से ही ख़ौफ़ था। कम्युनिस्ट सोवियत संघ के ख़िलाफ़ उन्हें नॉर्थवेस्ट फ्रंटियर पूरी तरह से अपने कन्ट्रोल में चाहिये था, ताकि रूस की तरफ़ से हमला होने की सूरत में उन्हें यहां के लोकल लोगों की बग़ावत का ख़तरा न हो, बल्कि इनकी पूरी मदद मिले।

ये सभी कारण पश्तूनों की किसी भी मूवमेंट को अंग्रेज़ों की जानिब से शक़ की निगाहों से देखे जाने के लिये बहुत थे। फिर, ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब तो सीधा-सीधा ही ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ मूवमेंट चला रहे थे, चाहे यह मूवमेंट अमनपसंद तहरीक ही थी।

अपने ख़िलाफ़ चलती किसी भी मूवमेंट को सख़्ती से दबाकर अँग्रेज़ यहाँ अपने हिमायती लोगों को आगे लाना चाहते थे, ताकि नार्थ वेस्ट फ्रंटियर ब्रिटिश इण्डियन कॉलोनी के लिये एक मजबूत हिफ़ाज़ती दीवार की तरह काम करे।

ये सब कारण थे कि ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के नेतृत्व वाली ख़ुदाई ख़िदमतगार मूवमेंट पर बहुत सख़्ती की।

अंग्रेज़परस्त सियासी लीडरशिप

सूबा सरहद में ब्रिटिश हुकूमत ने एक तरफ़ तो ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर बेतहाशा ज़ुल्म किया और दूसरी तरफ़ उनके ख़िलाफ़ अंग्रेज़परस्त लोगों की सियासी लीडरशिप खड़ी की गई।

किसी भी समाज में आम तौर पर दो तरह की लीडरशिप होती है। एक सियासी लीडरशिप और दूसरी मज़हबी लीडरशिप। मज़हब का इस्तेमाल सियासी फ़ायदे के लिये करने के लिये कई बार सियासी नेता मज़हब का बुर्क़ा भी ओढ़ लेते हैं।

पश्तून समाज में भी दो तरह के नेता मौजूद थे। सियासी और मज़हबी। परंपरागत पश्तून सियासी नेता तो जिरगा के बुज़ुर्ग ही थे। मौलाना और पीर पश्तून समाज के मज़हबी नेता थे।

ब्रिटिश हुकूमत ने भारत के दूसरे हिस्सों की तरह सूबा सरहद में भी सियासी रहनुमाओं की एक नई नस्ल खड़ी की। ये वे लोग थे, जिनको सरकार ने उनकी ख़िदमत से ख़ुश होकर 'सर', 'नवाब', 'ख़ान बहादुर', 'सरदार बहादुर', 'राय बहादुर' और 'राय साहिब' वग़ैरह के ख़िताब दिये थे।

'ख़ान बहादुर' का ख़िताब अंग्रेज़परस्त मुसलमानों को दिया जाता था। अंग्रेज़परस्त सिखों को 'सरदार बहादुर' और अंग्रेज़परस्त हिन्दुओं को 'राय बहादुर' का ख़िताब दिया जाता था।

कोई भी यह समझ सकता है कि ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत 'सर', 'नवाब', 'ख़ान बहादुर' वग़ैरह के ख़िताब उन्हीं लोगों को देती थी, जो

अंग्रेज़परस्त थे या जिनको अँग्रेज़ हुकूमत अपने लिये इस्तेमाल कर लेती थी। ये वही लोग थे, जिन पर अंग्रेज़ों को पूरा यक़ीन था।

'सर', 'नवाब', 'ख़ान बहादुर', 'सरदार बहादुर', 'राय बहादुर' और 'राय साहिब' वग़ैरह के ख़िताब वाले लोग पूरी तरह से ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत पर निर्भर थे। ज़ाहर-सी बात है कि वे वही कुछ करते थे, जो हुकूमत उनसे कराना चाहती थी। वे ऐसा कुछ भी नहीं करते, जो हुकूमत को नापसन्द होता। अगर वे ऐसा कुछ भी करते, जो हुकूमत को नापसन्द होता, तो सरकार उनको दी गयी सहूलतें वापिस ले सकती थी। इसलिये सहूलतों के लालच में वे वही कुछ करते, जो सरकार चाहती थी।

सरकारी टाइटल हासिल करने वाले ये लोग सरकार और सरकारी महकमों तक सीधी पहुँच रखते थे। उनके पास कुछ सरकारी हक़ भी थे। वे आम लोगों के कई सरकारी काम करा देने की हैसियत रखते थे। इनमें से कुछ को मैजिस्ट्रेट का रुतबा हासिल था। वे किसी को जेल भेज देने तक की हैसियत भी रखते थे।

आम लोगों को अपने काम कराने के लिये इन्हीं सरकारी टाइटल हासिल लोगों के पास जाने की ज़रूरत पड़ती थी। इसलिये ये 'सर', 'नवाब', 'ख़ान बहादुर', 'सरदार बहादुर', 'राय बहादुर' और 'राय साहिब' वग़ैरा आम लोगों में सियासी नेता बनकर उभर गये।

दूसरी तरफ़, परंपरागत पश्तून जिरगा के बुज़ुर्गों के पास ऐसी कोई क़ानूनी ताक़त नहीं थी कि वे लोगों का कोई दफ़्तरी काम करा पाते। उनके पास अँग्रेज़परस्त लोगों की तरह मैजिस्ट्रेट जैसी कोई ऐसी पावर नहीं थी कि वे किसी गुनाहगार को जेल भेज सकते। इससे ये बुज़ुर्ग अप्रासंगिक होते गये।

सामन्ती निज़ाम से हटकर एक आज़ाद लोकतांत्रिक निज़ाम की तरफ़ जाने के लिये ये ज़रूरी था कि समाज के सामन्ती ज़िमीदारों

की जगह आम लोगों में से ही सियासी नुमाइन्दे चुने जायें। लेकिन सूबा सरहद में अँग्रेज़परस्त लोगों को सियासत में इसलिये नहीं उभारा जा रहा था कि वे लोगों के असल प्रतिनिधि थे, बल्कि उनको तो इस वजह से उभारा किया जा रहा था कि वे अँग्रेज़ी हुकूमत के हिमायती थे।

परंपरागत सामन्तों की जगह पर अँग्रेज़परस्त नये सामन्त खड़े कर दिये गये। फिर इन्हीं अँग्रेज़परस्त नये सामन्तों को लोगों के चुने हुये नुमाइन्दे बनाने की क़वायद शुरू कर दी गयी।

1937 के चुनाव और ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री

जब 1935 का एक्ट बना, तो इण्डिया के दूसरे सूबों की तरह सूबा सरहद में भी 1937 में चुनाव का ऐलान हुआ। ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत के लिये यह मौक़ा था कि अपने खड़े किये गये अँग्रेज़परस्त नये सामन्तों को चुनाव जिता कर उनको लोगों के चुने हुये प्रतिनिधियों के तौर पर पेश करती।

अँग्रेज़परस्त इन नये सियासी रहनुमाओं के आगे सबसे बड़ी चुनौती ख़ुदाई ख़िदमतगार ही थे। पूरे सूबा सरहद में सिर्फ़ ख़ुदाई ख़िदमतगार ही एक सियासी पार्टी के तौर पर पूरी तरह से लामबन्द थे।

पर्दे के पीछे काम कर रहे ब्रिटिश हुकूमत के अफ़सरों ने ख़ुदाई ख़िदमतगारों को हराने के लिये पूरा ज़ोर लगाया। अंग्रेज़परस्त लोगों को चुनाव में ख़ुदाई ख़िदमतगारों के ख़िलाफ़ खड़ा किया गया। इन में कई 'सर', 'नवाब', 'ख़ान बहादुर', और 'राय बहादुर' शामिल थे।

सूबा सरहद की असेम्बली की 50 सीटें थीं। ब्रिटिश हुकूमत की तरफ़ से ख़ुदाई ख़िदमतगारों के ख़िलाफ़ पूरी ताक़त झोंक देने के बावजूद

ख़िदमतगारों ने सख़्त मुक़ाबला किया। हालाँकि वे पूर्ण बहुमत तो हासिल नहीं कर सके, लेकिन 50 में से 19 सीटों पर फ़तह हासिल करके उन्होंने दिखा दिया कि सूबा सरहद में सबसे बड़ी सियासी पार्टी वही हैं।

एक ख़ुदाई ख़िदमतगार अब्दुल अज़ीज़ ख़ान ने नवाब सर साहिबज़ादा अब्दुल क़य्यूम को हरा कर ब्रिटिश अफ़सरों को हैरानी में डाल दिया। 'नवाब सर' मुहम्मद अकबर ख़ान को उसी के ख़ानदान से ताल्लुक़ रखने वाले आमिर मुहम्मद ख़ान ने हरा दिया। अरबाब शेर अली ख़ान को भी उसी के ख़ानदान के अरबाब अब्दुल ग़फ़ूर ने हरा दिया। 'ख़ान बहादुर' कुली ख़ान को मुहम्मद अफ़ज़ल ख़ान ने हरा दिया।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों को हराकर जीत हासिल करने वाले अँग्रेज़परस्तों में तीन 'नवाब', दो 'नवाबज़ादे', दो 'ख़ान बहादुर', चार 'ख़ान साहिब', चार 'राय बहादुर', और दो 'राय साहिब' थे।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों को छोड़कर बाक़ी सभी लोग आज़ाद उम्मीदवारों की हैसियत से इलेक्शन जीते। अभी तक यहाँ सूबा सरहद में मुस्लिम लीग का कोई वजूद ही नहीं था, इसलिये उनका कोई भी मैम्बर असेम्बली में नहीं था।

अगर पंजाब की तरफ़ देखें, तो 1937 में ही जब पंजाब की सूबाई असेम्बली के चुनाव हुये, तो वहाँ अँग्रेज़परस्त सियासतदान आसानी से जीत गये और उनको वहाँ अपनी मिनिस्ट्री बनाने में कोई दिक्कत नहीं आयी।

दूसरी तरफ़, उसी वक़्त सूबा सरहद में हुये चुनाव में अँग्रेज़परस्त लोगों को ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने सख़्त टक्कर दी।

अप्रैल, 1937 में सूबा सरहद में 'नवाब सर' साहिबज़ादा अब्दुल क़य्यूम के नेतृत्व में अँग्रेज़परस्त लोगों की मिनिस्ट्री बना दी गयी।

लेकिन छह महीने बाद ही, सितम्बर, 1937 में साहिबज़ादा अब्दुल क़य्यूम की मिनिस्ट्री के ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव (नो कॉन्फिडेंस मोशन) लाया गया, जिसके बाद यह मिनिस्ट्री ख़त्म हो गयी।

उसके बाद ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के बड़े भाई ख़ान अब्दुल जब्बार ख़ान साहिब के नेतृत्व में ख़ुदाई ख़िदमतगारों की मिनिस्ट्री बनी। इसके लिये इण्डियन नेशनल काँग्रेस और सूबाई असेम्बली के कुछ और मेम्बरों ने अपनी हिमायत दी। ख़ान अब्दुल जब्बार ख़ान साहिब को ज़्यादातर डॉक्टर ख़ान साहिब के नाम से जाना जाता है।

डॉक्टर ख़ान साहिब

नोट करने वाली ख़ास बात यह है कि सितम्बर, 1937 में जिस दिन सूबा सरहद में साहिबज़ादा अब्दुल क़य्यूम के नेतृत्व वाली मिनिस्ट्री भंग की गई, बिल्कुल उसी दिन एबटाबाद में सूबा सरहद की मुस्लिम लीग की बुनियाद रखी गयी। जमाअत-ए-उलेमा के सदर मौलाना शकिरुल्लाह सूबाई मुस्लिम लीग के पहले सदर बनाये गये। जमाअत-ए-उलेमा के ही सेक्रेटरी मौलाना मुहम्मद शोएब को मुस्लिम लीग का भी सेक्रेटरी बनाया गया।

ब्रिटिश प्रोपेगैंडा और इस्लाम का नाम

इतनी कोशिशों के बाद भी अँग्रेज़परस्त लोगों की पक्की मिनिस्ट्री बनाने में नाकाम रही ब्रिटिश हुकूमत ने तब पश्तून समाज के मज़हबी रहनुमाओं यानी मौलवियों और पीरों की तरफ़ भी ज़्यादा तवज्जों देना शुरू कर दिया। ब्रिटिश हुकूमत के अफ़सरों ने कई मज़हबी रहनुमाओं को भी अपने हक़ में करने के लिये बहुत कोशिशें कीं और उसमें बहुत हद तक कामयाब भी रहे।

जिन इस्लामिक ताकतों के ख़िलाफ़ ब्रिटिश हुकूमत ने लड़ाई लड़ी और फ़तह भी हासिल की, वही इस्लामिक ताक़त ब्रिटिश साम्राज को अब सोवियत संघ से हिफ़ाज़त के लिये एक दीवार की तरह चाहिये थे। तुर्की से लेकर चीन की सरहद तक एक मज़बूत इस्लामिक दीवार यूरोप के साम्राज्यवादी और पूँजीवाद निज़ाम के लिये कम्युनिस्ट सोवियत संघ से हिफ़ाज़त के लिये बहुत ज़रूरी बन गयी। कम्युनिस्ट विचारधारा के विरोध के लिये इस्लामिक सियासी नज़रिये के इस्तेमाल करने का फ़ैसला हुआ। ब्रिटिश हुकूमत की तरफ़ से आल इण्डिया मुस्लिम लीग को गुप्त सरपरस्ती देने के पीछे यही वजह थी।

इण्डिया में ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग को अँग्रेज़-परस्त पार्टी होने की वजह से ब्रिटिश हुकूमत की तरफ़ से पूरी हिमायत मिली। भारतियों को बांटने के लिये अँग्रेज़ी हुकूमत ने मज़हब और जाति को कामयाबी से इस्तेमाल किया था। अल्पसंख्यकों (minority) को बहुसंख्यकों (majority) का ख़ौफ़ दिखा कर, बहुसंख्यकों (majority) को अल्पसंख्यकों (minority) का ख़ौफ़ दिखा कर, एक जाति के लोगों को दूसरी जाति के लोगों का डर दिखा कर अँग्रेज़ी

सरकार उन सभी पर अपनी पकड़ बनाये रखने की कोशिश करती थी।

सूबा सरहद में अँग्रेज़ी सरकार को दिक़्क़त यह थी कि यहाँ मुसलमान इतने ज़्यादा बहुसंख्यक (majority) थे कि उनको यहाँ के हिन्दू-सिख अल्पसंख्यकों (minorities) का ख़ौफ़ दिख़ाना बचकाना ही होता। सूबा सरहद में मुसलमानों की आबादी 93 फ़ीसद थी। हिन्दू, सिख आबादी महज़ 7 फ़ीसद थी।

सूबा सरहद में ब्रिटिश हुकूमत के लिये एक बड़ी समस्या यह थी कि सरहदी सूबे में मुसलमानों की इतनी भारी बहुसंख्या होने के बावजूद मुस्लिम लीग की यहाँ कोई मौजूदगी नहीं थी।

93 फ़ीसद मुस्लिम आबादी वाले इस सूबे में ख़ुदाई ख़िदमतगार तहरीक का ही ज़ोर था, जो कि पश्तून मुसलमानों की पार्टी थी।

ख़ुदाई ख़िदमतगार सोशलिस्ट थे और अँग्रेज़ी हुकूमत के सख़्त ख़िलाफ़ थे। ज़ाहिर-सी बात है कि साम्राजी अंग्रेज़ों को काँग्रेस की तरह ही इनसे भी ख़तरा था।

लेकिन सरहदी सूबे और क़बायली इलाक़ों के लिये इस्लाम का नाम इस्तेमाल करने में अंग्रेज़ों को ख़ुदाई ख़िदमतगारों से बड़ी दिक्कत थी। ये पक्के मुसलमान थे। अशराफ़ थे। कई जगहों पर मदरसे चलाते थे। हिन्दुओं और सिखों के सच्चे दोस्त थे। और, सूबा सरहद में अंग्रेज़ों के सबसे बड़े दुश्मन भी ख़ुदाई ख़िदमतगार ही थे। दूसरी तरफ़, अंग्रेज़-परस्त मुस्लिम लीग का सूबे की असेम्बली में एक भी मेम्बर नहीं था।

ब्रिटिश हुकूमत के लिये यह ज़रूरी हो गया कि सूबे में मुस्लिम लीग को तगड़ा किया जाये और ख़ुदाई ख़िदमतगारों को नुक़सान पंहुचाया जाये। उन्होंने ऐसा ही किया।

सूबा सरहद में पाकिस्तान मूवमेंट असल में ब्रिटिश हुकूमत और ख़ुदाई ख़िदमतगारों के दरमियान हुई लड़ाई है। ख़ुद को छुपाने के लिये अंग्रेज़ी हुकूमत ने पर्दे के पीछे रहकर मुस्लिम लीग की हर तरह से मदद की और ख़ुदाई ख़िदमतगारों को हर तरह से नुक़्सान पहुंचाया।

1937 में सूबा सरहद में ख़ुदाई ख़िदमतगारों की मिनिस्ट्री बनने के बाद सरकारी टाइटल वालों को अपनी फ़िक्र होने लगी। आम लोग सूबाई मिनिस्ट्री के कामों से ख़ुश थे। सरकारी टाइटल वालों की अहमियत कम होने लगी।

ब्रिटिश हुकूमत और उसके अफ़सरों ने सरकारी टाइटल वालों की बेचैनी को समझा। अफ़सरों के पास यह एक और मौक़ा था, जब वे ख़ुदाई ख़िदमतगारों के ख़िलाफ़ एक और साज़िश रच सकते थे। उन्होंने सूबा सरहद की मुस्लिम लीग का कन्ट्रोल अपने इन 'सर', 'नवाबों', 'ख़ान बहादुरों' वग़ैरह को देने का फ़ैसला किया।

1937 में सूबा सरहद की सूबाई असेम्बली में मुस्लिम लीग का एक भी मेम्बर नहीं था। 1937 के चुनाव के वक़्त वहां मुस्लिम लीग का कोई वजूद ही नहीं था।

सितम्बर, 1937 में एबटाबाद में सूबाई मुस्लिम लीग की बुनियाद रखी गई थी। नौशेरा के मौलाना शकिरुल्लाह को इसका सदर बनाया गया। वह जमीअत-उल-उलेमा के सदर भी थे। मरदान के मौलाना मोहम्मद शोएब को सेक्रेटरी बनाया गया। वे जमीअत-उल-उलेमा के भी सेक्रेटरी थे।

अप्रैल, 1937 में जिस दिन सर साहिबज़ादा अब्दुल क़य्यूम की सूबा सरहद की मिनिस्ट्री भंग हुई, बिल्कुल उसी दिन सूबा सरहद की मुस्लिम लीग की बुनियाद रखी गई।

एक साल बाद ही, सितम्बर, 1938 में सूबा सरहद की मुस्लिम लीग की लीडरशिप को बदल दिया गया। मौलाना शकिरुल्लाह की जगह 'ख़ान बहादुर' सादुल्लाह ख़ान सूबा सरहद की मुस्लिम लीग के नेता बना दिये गये।

सूबा सरहद की मुस्लिम लीग ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग का सिर्फ़ नाम-निहाद हिस्सा ही थी, वरना वह आज़ादाना तौर पर ही काम कर रही थी। सूबाई मुस्लिम लीग पूरी तरह से उन लोगों के कंट्रोल में आ गई, जिनको अँग्रेज़ी हुकूमत की तरफ़ से सर, नवाब, ख़ान बहादुर, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट वग़ैरह के टाइटल मिले हुये थे।

एक तो, सर, नवाब, ख़ान बहादुर, ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट वग़ैरह के टाइटल हासिल करने वाली अँग्रेज़ परस्त सियासी लीडरशिप को अब मुस्लिम लीग का बैनर मिल गया। दूसरा, सूबा सरहद में अपनी मुख़ालिफ़ जमातों का मुक़ाबला करने के लिये ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत के पास अब सूबाई मुस्लिम लीग के तौर पर एक सियासी फ्रण्ट मौजूद था।

लेकिन, ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत को सूबा सरहद में एक ऐसा मज़हबी फ्रण्ट भी चाहिये था, जिसकी आड़ में वह कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट विचारधारा को सूबा सरहद और क़बायली इलाक़ों में फैलने से रोक सके।

अफ़ग़ानिस्तान के पूरी तरह से आज़ाद हो जाने के बाद से ही ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत सूबा सरहद और क़बायली इलाक़ों को एक बफ़र ज़ोन के तौर पर तैयार करने में लगी हुई थी। इसके लिये इस्लाम का इस्तेमाल करना उनको सबसे आसान रास्ता लगता था।

सूबाई मुस्लिम लीग के तौर पर एक सियासी फ्रण्ट तैयार करने के साथ-साथ एक मज़हबी फ्रण्ट भी तैयार किया जाने लगा।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के बेटे और आज़ादी कारकुन ख़ान अब्दुल वली ख़ान साहिब ने इस पर बहुत विस्तार से लिखा है। जो इसको विस्तार से जानना चाहें, वे उनकी किताब में पढ़ सकते हैं। पश्तो ज़बान में लिखी उनकी यह किताब इंग्लिश में 'Facts Are Facts' के नाम से मिलती है। इसका उर्दू तर्जुमा भी है। अब्दुल वली ख़ान साहिब के हवाले से मैं यहाँ कुछ बातों का ज़िक्र कर रहा हूँ।

ख़ान अब्दुल वली ख़ान साहिब ने इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में ख़ुद जाकर सर जॉर्ज कनिंघम की डायरियों का अध्ययन किया और उनसे नोट्स लिखे। जॉर्ज कनिंघम की डायरियों से यह बिल्कुल साफ़ हो जाता है कि कैसे उस वक़्त की ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत ने मज़हबी रहनुमाओं को अपने हितों के लिये इस्तेमाल किया।

सूबा सरहद और क़बायली इलाक़ों में गवर्नर जॉर्ज कनिंघम ने मौलवियों और पीरों के ज़रिये जो प्रोपेगैंडा किया, उस पर इंग्लिश की एक किताब 'British Propaganda and Wars of Empire: Influencing Freinds and Foe' भी पढ़ने लायक है, जो क्रिस्टोफर टक और प्रोफेसर ग्रेग कैनेडी ने एडिट की है।

सर जॉर्ज कनिंघम ब्रिटिश इण्डिया में सूबा सरहद के गवर्नर थे। सूबा सरहद में पाकिस्तान मूवमेंट में उनका बहुत बड़ा रोल था। मुहम्मद अली जिन्नाह सर जॉर्ज कनिंघम की कितनी क़द्र करते थे, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पाकिस्तान बनते ही मुहम्मद अली जिन्नाह ने कनिंघम को बुलाकर आज़ाद पाकिस्तान में सूबा सरहद का पहला गवर्नर नियुक्त किया था।

ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत की तरफ़ से पूरे इण्डिया में प्रोपेगैंडा-वॉर (प्रोपेगैंडा-जंग) बहुत सालों से जारी था, लेकिन दूसरी संसार जंग में उनको इसकी ज़रूरत बहुत ज़्यादा महसूस हुई। यह प्रोपेगैंडा-वॉर

चल तो पूरे इण्डिया में रही थी, लेकिन इस लेख में मैं सिर्फ़ सूबा सरहद में चली ब्रिटिश प्रोपेगैंडा-वॉर की ही बात करूँगा। वैसे भी, ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत को बड़े पैमाने पर हथियारबन्द बग़ावत का ख़तरा ख़ासतौर पर सरहदी पश्तूनों से ही था। इसलिये ज़ोरदार प्रोपेगैंडा भी उन्हीं के इलाक़ों में हुआ।

प्रोपगेंडा के लिये सरकार ने रेडियो और फ़िल्मों का भी इस्तेमाल किया और पैम्फलेटस का भी। रेडियो की समस्या यह थी कि बहुत कम लोगों के पास रेडियो सेट थे। फ़िल्मों की समस्या यह थी कि उन्हें दूर के इलाक़ों, ख़ास करके ऊंचे पहाड़ी इलाक़ों में लोगों तक पहुंचाना तक़रीबन नामुमकिन था। पैम्फलेटस की समस्या यह थी कि सूबा सरहद के ज़्यादातर लोग पढ़े-लिखे नहीं थे।

इस लिये एक रास्ता यह निकाला गया कि मौलवियों और पीरों को सरकारी प्रोपगेंडा के लिये इस्तेमाल किया जाये, क्योंकि उनका लोगों से सीधा सम्पर्क था।

सर जॉर्ज कनिंघम ने सूबा सरहद के मौलवियों और पीरों से सम्पर्क करने के लिये 'ख़ान बहादुर' कुली ख़ान का इस्तेमाल किया। कुली ख़ान को यह ज़िम्मेदारी दी गई कि वह उन मौलवियों से भी ख़ुफ़िया तौर पर सम्पर्क करे, जो खुलेआम सामने आकर हिमायत करने को तैयार नहीं थे।

कनिंघम ने कुली ख़ान के ज़रिये सबसे पहले मुल्ला मरवत को भर्ती किया। मुल्ला मरवत पहले ख़ाकसार तहरीक से जुड़े हुये थे। कुली ख़ान ने मुल्ला मरवत को यह यक़ीन दिला दिया कि इस्लाम की सेवा यही है कि इस्लाम के दुश्मनों के ख़िलाफ़ जिहाद किया जाये। इस्लाम के दुश्मन कौन हैं, इस बात का फ़ैसला साम्राजी ब्रिटिश हुकूमत के अफ़सर करते थे।

मुल्ला मरवत का इस्तेमाल करके जमीअत-उल-उलेमा-ए-सरहद के अहुदेदारों से भी सम्पर्क किया गया।

सूबा सरहद के गर्वनर थे सर जॉर्ज कनिंघम, और सर जॉर्ज कनिंघम के डायरेक्ट एजेंट थे कुली ख़ान, और आगे कुली ख़ान के एजेंट थे मुल्ला मरवत। इस तरह इन्होंने सूबा सरहद में मौलवियों और पीरों का एक ऐसा मज़बूत गठजोड़ बनाना शुरू किया, जिसको इस्लाम के नाम पर ब्रिटिश हुकूमत के फ़ायदे के लिये इस्तेमाल किया जा सके।

कनिंघम ने मौलवियों के तीन वर्ग बनाये। पहले वर्ग में छोटे मौलवी थे। इस वर्ग के मौलवियों के इंचार्ज स्थानक 'ख़ान साहिब' या 'ख़ान बहादुर साहिब' बना दिये गये। जो इनसे बड़े मौलवी थे, उनके इंचार्ज डिप्टी कमिश्नरज़ बना दिये गये। जो बहुत बड़े मौलवी थे, उनका सीधा राब्ता गवर्नर कनिंघम से था।

मिसाल के तौर पर, कनिंघम की तरफ़ से 'ख़ान बहादुर' ग़ुलाम हैदर ख़ान शेरपाओ को 9-10 मौलवियों का इंचार्ज बनाया गया था। 'ख़ान बहादुर' ग़ुलाम हैदर ख़ान शेरपाओ पाकिस्तान मूवमेंट का एक बड़ा नाम माने जाते हैं। पाकिस्तान बनने के बाद सूबा सरहद के आठवें गवर्नर बने हयात मोहम्मद ख़ान शेरपाओ उन्हीं 'ख़ान बहादुर' ग़ुलाम हैदर ख़ान शेरपाओ के बेटे थे।

कनिंघम ने लिखा है कि उसने ग़ुलाम हैदर को कहा कि वह हर मुल्ला को ज़ाती तौर पर मिले और उसे इस्लाम के लिये काम करने के लिये तैयार करे। ग़ुलाम हैदर को ताक़ीद की गई कि हर मुल्ला को सरकार की तरफ़ से 45 रुपये दिए जाएं। उन दिनों 45 रुपये एक छोटे मौलवी के लिये बड़ी रक़म हुआ करती थी।

कनिंघम ने ग़ुलाम हैदर से यह भी कहा कि मौलवियों को इशारा दे दिया जाये कि अगर उनका काम तसल्लीबख़्श हुआ, तो उनको सरकारी पेन्शन भी दी जा सकती है।

कनिंघम ने लिखा है कि उसने ग़ुलाम हैदर को 600 रुपये दिये। ये रुपये उन्हीं मौलवियों में बांटे जाने के लिये थे।

इसी तरह, नौशेरा और पेशावर ज़िलों के मौलवियों का इंचार्ज डिप्टी कमिश्नर इस्कन्दर मिर्ज़ा को बनाया गया।

स्वात, बनेर, और मरदान के मौलवियों की ज़िम्मेदारी स्वात रियासत के वज़ीर ए आज़म हज़रत अली की थी। हज़रत अली के अधीन मौलवियों को हर महीने उस वक़्त के 15 रुपये दिये जा रहे थे।

इसी तरह, बन्नू के मौलवियों की ज़िम्मेदारी नवाब ज़फ़र ख़ान और ताज अली शेरपाओ को दी गई। ताज अली उन्हीं 'ख़ान बहादुर' ग़ुलाम हैदर ख़ान शेरपाओ के बेटे थे, जो कनिंघम के ख़ास आदमी थे और उन्हीं के अधीन काम कर रहे थे।

डेरा इस्माइल ख़ान के डिप्टी कमिश्नर मोहम्मद असलम को कनिंघम ने 600 रुपये दिये। ये रुपये उस इलाके के तीन मज़हबी रहनुमा, अमा खेल के फ़क़ीर, पीर मूसा ज़ई और पीर ज़कूरी को देने के लिये थे। इन तीनों को भी यह कहा गया कि अगर उनका काम तसल्लीबख़्स हुआ, तो उनकी पेमेंट बढ़ा दी जायेगी।

ख़ैबर के मौलवियों की ज़िम्मेदारी वहाँ के पलिटिकल एजेंट मिस्टर बेकन की थी। ख़ैबर में पोलिटिकल एजेंट ने मौलाना अब्दुल बक़ी को अपने मिशन में शामिल करके उसे 1000 रुपये दिये।

मौलवी बरकतउल्ला को कनिंघम ने 1000 रुपये दिये थे। बरकतउल्ला के ज़रिये बाजौर के 10-12 मौलवी ब्रिटिश हुकूमत के इस मिशन के लिये भर्ती किये गये थे।

ऐसा नहीं था कि गवर्नर कनिंघम मौलवियों और पीरों को रुपये बांट कर उन पर अंधा यक़ीन कर लेता था। बाक़ायदा जासूसों को उन मौलवियों और पीरों पर नज़र रखने के लिये भेजा जाता था। यह निश्चित किया जाता था कि जिस मक़सद के लिये ब्रिटिश हुकूमत उन मौलवियों और पीरों पर रुपये लुटा रही थी, वह मक़सद पूरा भी हो रहा था।

अँग्रेज़ी हुकूमत की तरफ़ से फेंके गये रुपयों का कमाल था कि कई ऐसे मौलवी भी अँग्रेज़ी हुकूमत के तरफ़दार हो गये, जो पहले अँग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ थे।

दूसरी संसार जंग शुरू होने से ब्रिटिश साम्राज्य को फिर से यह डर सताने लगा कि कहीं हालात का फ़ायदा उठा कर सोवियत यूनियन अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते ब्रिटिश इण्डिया पर हमला न कर दे।

तब अंग्रेज़ी हुक्मरानों के इशारे पर जमीअत-उल-उलेमा ने यह ऐलान किया कि रूस अगर अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करता है, तो हर मुसलमान का यह फ़र्ज़ है कि वह रूस के ख़िलाफ़ जिहाद में शामिल हो।

इसके लिये उन मौलवियों ने दलील पेश की कि अंग्रेज़ बाइबिल को मानने वाले हैं, जो कि एक आसमानी किताब है। इस तरह अंग्रेज़ अहल-ए-किताब हैं। जबकि सोवियत यूनियन के हुक्मरान कम्युनिस्ट हैं, जो न ख़ुदा को मानते हैं और न किसी आसमानी किताब को। इसलिये अंग्रेज़ों और मुसलमानों को मिलकर काफ़िर कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ लड़ना चाहिए। इसलिये उन मौलवियों और पीरों ने मुसलमानों को ब्रिटिश इण्डियन आर्मी में भर्ती होने के लिये

कहा, ताकि काफ़िर कम्युनिस्ट सोवियत संघ के ख़िलाफ़ जंग करके इस्लाम की ख़िदमत की जा जाये।

इण्डियन नेशनल काँग्रेस के नेता ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत की इस बात के लिये मुख़ालफ़त कर रहे कि इण्डियन रहनुमाओं को पूछे बिना ही इण्डिया को भी संसार जंग में शामिल कर दिया गया था। अक्टूबर, 1939 में इण्डियन नेशनल काँग्रेस ने अपनी सभी आठ सूबाई मिनिस्ट्रीज़ से इस्तीफ़ा दे दिया। यह एक ख़ुदकुश क़दम था। वाइसराय लिनलिथगोअ (Linlithgow) और मुहम्मद अली जिन्नाह काँग्रेस के इस क़दम से बहुत ख़ुश हुये। जिन्नाह ने तो बाक़ायदा 22 दिसम्बर, 1939 को 'मुक्ति-दिवस' (Day of Deliverance) के तौर पर मनाया।

एक तरफ़ काँग्रेस के सभी बड़े रहनुमाओं को अँग्रेज़ी हुकूमत ने जेलों में बंद कर दिया। दूसरी तरफ़ सरकार परस्त मौलवियों ने काँग्रेस के ख़िलाफ़ भी प्रोपगेंडा तेज़ कर दिया। काँग्रेस के जंग के ख़िलाफ़ लिये गये फ़ैसले को लेकर इस तरह से प्रोपेगैंडा किया गया, जैसे जंग में शामिल न होना इस्लाम के ख़िलाफ़ है।

इस तरह सोवियत यूनियन और इण्डियन नेशनल काँग्रेस को इस्लाम का दुश्मन कहकर उनके ख़िलाफ़ प्रोपगेंडा तेज़ कर गया। ख़ुदाई ख़िदमतगार भी काँग्रेस के साथ होने की वजह से इस प्रोपगेंडा का शिकार बना दिये गये।

भारत मे रहते लोगों की कम्युनिस्ट सोवियत रूस से क्या दुश्मनी थी? भारत मे रहते लोगों की जर्मनी से क्या दुश्मनी थी? भारत मे रहते लोगों की इटली से क्या दुश्मनी थी?

भारत मे रहते लोगों की अगर दुश्मनी थी, तो साम्राजी ब्रिटन से थी, जो पूरे भारत पर अपनी ताक़त से कब्ज़ा जमाये बैठा था। ज़रूरत

तो इस बात की थी कि भारत के लोग आपस में एकता रखते और ब्रिटिश साम्राज्य को इण्डिया से उखाड़ फेंकते।

कनिंघम ने लिखा है कि जमीअत-उल-उलेमा के लोगों ने जून, 1942 में कोहाट ज़िले का, और जुलाई में पेशावर और मरदान का दौरा करके इस्लामिक थीम पर एन्टी-एक्सिस (anti-Axis) (जर्मनी, इटली, और जापान विरोधी) प्रोपगेंडा और पाकिस्तान थीम पर काँग्रेस-विरोधी प्रोपगेंडा किया।

अँग्रेज़ परस्त मुल्ला जो भी पैम्फलेट बाँटते, उसको पहले गवर्नर कनिंघम को दिखा कर मंज़ूरी लेते। कनिंघम ने ख़ुद लिखा है कि मौलाना मोहम्मद शुऐब और मौलाना मिद्ररूल्लाह उसे मिलने नथियागली आये और उसे उर्दू में एक बड़ा ड्राफ़्ट दिखाया, जो एन्टी काँग्रेस, एन्टी जापान, और एन्टी मार्क्सिस्ट था।

ख़ान अब्दुल वली ख़ान साहिब ने लिखा है कि अँग्रेज़ों ने उन मौलवियों के नाम और पते दर्ज करके इस्लाम की मदद की है। पेशावर ज़िले से वे 24 मौलवी थे, जिनमें से 6 पेशावर शहर से थे, 13 चारसदा तहसील से थे, 3 नौशेरा तहसील से थे। 18 मौलवी मरदान और सवाबी से थे। यह पढ़ना शर्मनाक लगता है कि कैसे मज़हब के इन तर्जुमानों ने अपना ईमान पोलिटिकल एजेंटों को बेच दिया और चांदी के चंद सिक्कों के बदले इस्लाम की सौदेबाज़ी की। इण्डिया के सच्चे बेटों और वतनपरस्तों के ख़िलाफ़ उनके झूठे फ़तवें के सबूत देखना और भी ग़म की बात है। - यह ख़ान अब्दुल वली ख़ान साहिब ने लिखा है।

इसी दौरान हालात ऐसे हो गये कि अँग्रेज़ी हुकूमत को सोवियत संघ का ब्रिटिश इण्डिया या अफ़ग़ानिस्तान पर हमले का अंदेशा ख़त्म हो गया। लेकिन जगह-जगह पर ब्रिटिश साम्राज्य को जर्मनी की तरफ़ से हार का सामना करना पड़ रहा था।

ईपी के फ़क़ीर हाजी मिर्ज़ाली ख़ान वज़ीर की तरफ़ से क़बायली इलाके में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ छेड़ा जिहाद लगातार जारी था। उससे अँग्रेज़ी हुकूमत बहुत परेशान थी।

अँग्रेज़ी हुकूमत को लग रहा था कि अफ़ग़ानिस्तान में जर्मन और इटली के एजेंट ईपी के फ़क़ीर की मदद कर रहे हैं। इसमें कुछ हद तक सच्चाई हो भी सकती थी। वैसे, कभी अँग्रेज़ी हुकूमत को यह भी लगता रहा था कि फ़क़ीर की मदद सोवियत संघ कर रहा है।

अँग्रेज़ी हुकूमत ने अफ़ग़ानों पर ज़ोर डाला कि वे जर्मनों को अफ़ग़ानिस्तान से बाहर निकाल दें। अफ़ग़ानों ने ऐसा नहीं किया।

इसी दौरान सीरिया के शमी पीर की तरफ़ से क़बायलिओं को अफ़ग़ान सरकार के ख़िलाफ़ बग़ावत के लिये उकसाने का बड़ा वाक़या हुआ। अंग्रेज़ों ने शमी पीर को 25 हज़ार पाउंड देकर वापिस सीरिया भेज दिया।

शमी पीर की इस कारवाई के पीछे असल में कौन-सी ताक़त थी, इसको लेकर लोगों के अलग-अलग विचार हैं। लेकिन इतना ज़रूर है कि शमी पीर के जाने के बाद अंग्रेज़ों ने ईपी के फ़क़ीर के साथ भी सौदेबाज़ी करनी चाही। लेकिन यह फ़क़ीर बिकने वालों में से नहीं था।

ब्रिटिश इण्डिया के क़बायली इलाक़ों और अफ़ग़ानिस्तान में एक्सिस फोरसिस (जर्मनी, इटली, और जापान) की तरफ़ से भी प्रोपेगैंडा बढ़ने लगा। एक्सिस फोरसिस की यह कोशिश थी कि क़बायली लड़ाकों को ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ लड़ने के लिये तैयार किया जाये।

अब ब्रिटिश प्रोपेगैंडा मशीनरी ने अपने प्रोपेगैंडा में थोड़ा-सा बदलाव करने का फ़ैसला किया।

सूबा सरहद के उस वक़्त गवर्नर रहे कनिंघम ने लिखा है कि उसने कुली ख़ान को सलाह दी कि वह एन्टी बोल्शेविक, एन्टी कम्युनिस्ट प्रोपेगैंडा को बदले और ज़्यादा ज़ोर जर्मनी और इटली के ख़िलाफ़ प्रोपेगैंडा करने पर दे।

कम्युनिस्ट सोवियत संघ के ख़िलाफ़ प्रोपेगैंडा करते वक़्त ये मौलवी कहते थे कि अंग्रेज़ बाइबिल को मानने वाले हैं, जो कि एक आसमानी किताब है। इस तरह अंग्रेज़-अहल ए-किताब हैं। जबकि सोवियत संघ के हुक्मरान कम्युनिस्ट हैं, जो न ख़ुदा को मानते हैं और न किसी आसमानी किताब को। इसलिये अंग्रेज़ों और मुसलमानों को मिलकर काफ़िर कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ लड़ना चाहिए।

अब उन्हीं मौलवियों को जर्मनी और इटली के ख़िलाफ़ प्रोपेगैंडा करने की ताक़ीद की गई। जर्मनी और इटली के लोग भी तो मज़हबी अक़ीदे से वैसे ही थे, जैसे ब्रिटिश थे। वे भी बाइबिल को मानने वाले अहल-ए-किताब थे। अगर वे मौलवी अंग्रेज़ों की हिमायत इस लिये कर रहे थे कि अंग्रेज़ अहल-ए-किताब हैं, तो जर्मनी और इटली वाले भी तो अहल-ए-किताब ही थे।

लेकिन मौलवियों को इससे कोई मतलब ही नहीं था। अंग्रेज़ों ने रूसियों को काफ़िर कहा, तो मौलवियों ने भी रूसियों को काफ़िर कह दिया। अब जब अंग्रेज़ों ने जर्मनी और इटली को इस्लाम के दुश्मन कहा, तो मौलवियों ने जर्मनी और इटली को इस्लाम के दुश्मन मान लिया।

वैसे, वक़्त-वक़्त की बात है। तब कम्युनिस्ट होने की वजह से सोवियत संघ काफ़िर था। अब एक काफ़िर कम्युनिस्ट मुल्क चीन ही पाकिस्तान का सबसे बड़ा दोस्त है।

ख़ैर। मुस्लिम ओट्टोमन एम्पायर को तोड़ने वाले, मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र को जलावतन करके उसको क़ैद में डालने वाले, अफ़ग़ानों पर ज़ुल्म करने वाले, सूबा सरहद और क़बायली इलाक़ों में पश्तूनों पर ख़ौफ़नाक ज़ुल्म करने वाले ब्रिटिश हुक्मरानों को इस्लाम और मुसलमानों के सच्चे ख़ैरख़्वाह मानने वाले इन अँग्रेज़ परस्त मौलवियों और पीरों को बस ब्रिटिश हुकूमत से मिल रहे रुपयों से मतलब था। मज़हब का नाम वे बस अपने निजी लाभ के लिये इस्तेमाल कर रहे थे।

दूसरा विश्व युद्ध

दूसरे विश्व युद्ध में भारतीय नेताओं से पूछे बिना ही इण्डिया को जंग में शामिल कर देने के ख़िलाफ़ इण्डियन नेशनल काँग्रेस की अलग-अलग मिनिस्ट्रीज़ ने अक्टूबर-नवम्बर 1939 में इस्तीफ़े दे दिये।

इण्डियन नेशनल काँग्रेस की बाक़ी सूबाई मिनिस्ट्रीज़ की तरह सूबा सरहद की ख़ान अब्दुल जब्बार ख़ान साहिब (डॉक्टर ख़ान साहिब) के नेतृत्व वाली ख़ुदाई ख़िदमतगार-इण्डियन नेशनल काँग्रेस मिनिस्ट्री ने भी इस्तीफ़ा दे दिया।

सूबाई मिनिस्ट्रीज़ के इस्तीफ़े देने की रणनीति संयुक्त भारत और इण्डियन नेशनल काँग्रेस को बहुत महँगी पड़ी।

बंगाल, सिन्ध, और सूबा सरहद में ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत की मदद से आल इण्डिया मुस्लिम लीग ने अन्य गुटों से मिल कर अपनी मिनिस्ट्रीज़ बना लीं।

इससे मुस्लिम लीग को अपना राजनीतिक प्रोपेगैंडा करने का मौक़ा मिल गया। तब, मार्च, 1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर सैशन में अलग मुस्लिम स्टेट के लिये प्रस्ताव पारित किया गया।

ख़ुदाई ख़िदमतगार-इण्डियन नेशनल काँग्रेस मिनिस्ट्री के इस्तीफ़ा दे देने से सूबा सरहद का प्रबन्ध सीधा गवर्नर के अधीन आ गया। लगभग तीन साल तक सूबा सरहद की सूबाई असेम्बली सस्पेंड ही रही।

1942 में गांधी जी ने भारत छोड़ो आन्दोलन (Quit India Movement) शुरू कर दिया। ब्रिटिश हुकूमत ने गांधी जी समेत कांग्रेस के लगभग सभी बड़े नेताओं को क़ैद कर लिया। ये सभी 1944 तक जेलों में ही बन्द रहे।

कांग्रेस के लगभग सभी बड़े नेताओं के जेलों में होने की वजह से जिन्नाह और मुस्लिम लीग के लिये मैदान ख़ाली था। अपना आधार बढ़ाने के लिये उनके पास यह बहुत बड़ा मौक़ा था। और, उन्होंने यह मौक़ा नहीं गवाया। बस फिर देखते ही देखते पाकिस्तान मूवमेंट ज़ोर पकड़ने लगी।

सूबा सरहद में भी ख़ुदाई ख़िदमतगार-इण्डियन नेशनल काँग्रेस के अधिकतर सदस्य जेलों में बन्द थे। ऐसे में गवर्नर सर जॉर्ज कनिंघम के सामने कोई ज़्यादा मुश्किलें नहीं थीं। सूबा सरहद की सूबाई असेम्बली में मुस्लिम लीग का एक भी सदस्य न होने के बावजूद ब्रिटिश हुक्मरानों ने वहाँ मुस्लिम लीग की मिनिस्ट्री बनाने की कोशिश करनी शुरू दी।

असेम्बली के सदस्यों को ख़रीदने के लिये रुपयों का भी इस्तेमाल किया गया और इस्लाम के नाम का भी।

ऐसी एक उदाहरण पेशावर के सरदार अब्दुल रब निश्तर की है, जो कि मजलिस-ए-अहरार-उल-इस्लाम के साथ थे और मुस्लिम लीग के ख़िलाफ़ थे। ब्रिटिश सरकार के अफ़सर इस्कन्दर मिर्ज़ा ने निश्तर को इस्लाम के नाम पर मुस्लिम लीग के लिये काम करने

के लिये प्रेरित किया। नतीजे में निश्तर ने अहरार को छोड़ कर मुस्लिम लीग में शामिल होना मन्ज़ूर कर लिया।

सरदार औरंगज़ेब ख़ान गवर्नर कनिंघम के बहुत आज्ञाकारी थे। उन्हीं के नेतृत्व में ब्रिटिश इण्डियन हुक्मरानों ने सूबाई मिनिस्ट्री बना दी। अहरार से निकाल कर लाये गये सरदार अब्दुल रब निश्तर को भी औरंगज़ेब मिनिस्ट्री में मन्त्री बनाया गया।

सिद्धांतों को तक पर रख कर बनाई गई मुस्लिम लीग की सूबा सरहद की यह मिनिस्ट्री जल्द ही सूबाई मुस्लिम लीग में गुटबाज़ी का शिकार हो गई। जिन सदस्यों को मिनिस्ट्री से कुछ ज़्यादा फ़ायदा नहीं हुआ, उनमें असंतोष फैल गया। लेकिन अंग्रेज़ हुक्मरानों ने मुस्लिम लीग की इस सूबाई मिनिस्ट्री को किसी न किसी तरह से बचाने की कोशिशें जारी रखीं।

सूबाई मुस्लिम लीग में गुटबाज़ी और आपसी मनमुटाव बढ़ता ही गया। इसका असर प्रशासन के काम-काज पर भी पड़ रहा था।

उधर, सरकार ने सूबाई असेम्बली के ख़ुदाई ख़िदमतगार सदस्यों को एक-एक कर के जेलों से रिहा करना शुरू कर दिया।

अंग्रेज़ी हुक्मरानों की कोशिशों के बावजूद मुस्लिम लीग की सरदार औरंगज़ेब ख़ान की मिनिस्ट्री बचाई नहीं जा सकी। असेम्बली में मिनिस्ट्री के ख़िलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया और इस तरह 1944 में यह मिनिस्ट्री ख़त्म हो गई।

डॉक्टर ख़ान साहिब के नेतृत्व में ख़ुदाई ख़िदमतगारों और इण्डियन नेशनल काँग्रेस ने फिर से सूबा सरहद में अपनी मिनिस्ट्री बनाने में कामयाबी हासिल की।

1946 के चुनाव

फ़रवरी, 1946 में सूबा सरहद में चुनाव कराए गये। मुस्लिम लीग ने यह चुनाव पाकिस्तान के मुद्दे पर लड़े, लेकिन नफ़रत का प्रचार करते-करते उन्होंने इस्लाम और कुफ़्र को भी मुद्दा बना लिया।

ब्रिटिश इण्डियन हुक्मरानों और मुस्लिम लीग की लाख कोशिशों के बावजूद ख़ुदाई ख़िदमतगार और इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने स्पष्ट बहुमत हासिल कर लिया।

जमीयत-उल-उलेमा की टिकटों पर जीतने वाले दो सदस्यों के ख़ुदाई ख़िदमतगारों में शामिल होने से 50-सदस्यों वाली सूबाई असेम्बली में ख़ुदाई ख़िदमतगार- इण्डियन नेशनल कांग्रेस और उनकी हिमायत करने वालों के 33 सदस्य थे। बिल्कुल स्पष्ट है कि सूबा सरहद के लोगों ने पाकिस्तान के मुद्दे पर लड़े गये 1946 के चुनाव में पाकिस्तान की मांग को रद्द कर दिया था।

ज़िला हज़ारा का क़त्लेआम

9 दिसंबर, 1946 को भारत की संविधान सभा (कांस्टीट्यूइंट असेम्बली) का सैशन बुलाया गया। आल इण्डिया मुस्लिम लीग ने इस का विरोध किया और इस में शामिल होने से इनकार कर दिया। उनका ख़्याल था कि उनके बहिष्कार की वजह से सैशन रद्द कर दिया जाएगा। लेकिन इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के शामिल न होने के बावजूद सैशन करने का फ़ैसला लिया।

सूबा सरहद की मुस्लिम लीग ने 9 दिसंबर, 1946 को भारत की संविधान सभा (कांस्टीट्यूइंट असेम्बली) के सैशन से ठीक पहले हज़ारा ज़िले के अल्पसंख्यक समुदाय, हिन्दुओं और सिखों को अपनी ख़ून्खार नीति का निशाना बनाने का फ़ैसला लिया। सूबाई मुस्लिम लीग इस क़त्लेआम से अहिंसा के सिद्धांत को मानने वाले

ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री को अपनी ताक़त दिखाकर डराना चाहती थी।

अंग्रेज़ों के अमानवीय ज़ुल्मों का सामना अहिंसा से करने वाले ख़ुदाई ख़िदमतगार मुसलमानों के सामने मुस्लिम लीग समर्थकों द्वारा सूबा सरहद में अल्पसंख्यकों का क़त्लेआम एक ऐसा चैलेंज था, जिस की उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।

सूबा सरहद में मुस्लिम लीग का सबसे ज़्यादा प्रभाव ज़िला हज़ारा (अब हज़ारा डिवीज़न) में था। फ़रवरी, 1946 में सूबा सरहद की सूबाई असेम्बली के लिये हुए चुनाव में हज़ारा ज़िले की 9 सीटों में से 8 सीटों पर मुस्लिम लीग ने ही जीत हासिल की थी। यह ही वजह थी कि बेगुनाहों का लहू बहाने के लिये ज़िला हज़ारा को चुना गया।

मुस्लिम लीग ने अपने सशत्र विंग मुस्लिम नेशनल गार्ड्स के साथ मिलकर 8 दिसंबर को क़त्लेआम की शुरुआत की।

सबसे पहला हमला 8 दिसम्बर 1946 को बठल गांव पर किया गया। इस हमले में 9 अल्पसंख्यक दुकानदारों को क़त्ल कर दिया गया। 10 साल की एक बच्ची को गुण्डे उठा कर ले गये।

अगले ही दिन, 9 दिसम्बर को अगरौर में 2 दुकानदारों को मार दिया गया। घरों और गुरुद्वारा साहिब को आग लगा दी गयी।

इसके अगले दिन समधडे गांव पर हमला हुआ। हिन्दू दुकानदारों को मार डाला गया और सामान लूट लिया गया।

ये हमले हज़ारा में क़त्लेआम की शुरुआत थी।

हज़ारा के मुसलमानों से हिन्दुओं और सिखों के बहुत अच्छे तअल्लुक थे। सभी मज़हबों के लोग एक-दूसरे की ख़ुशी और ग़मी

में शामिल होते थे। कितने ही रस्म-ओ-रिवाज़ उनमें एक जैसे ही थे। वे सब वही ज़बान बोलते थे, जो बाक़ी लोग बोलते थे। वे भी हज़ारा की उसी मिट्टी के बेटे थे, जिस मिट्टी के बेटे हज़ारा के मुसलमान थे।

सरकार क्या कहती है या सरकार क्या चाहती है, यह एक अलग मुद्दा है। लेकिन, अगर लोगों का एक ग्रुप क़त्लों और लूटमार पर उतर आए, तो उसको रोकना इतना आसान भी नहीं होता। इसलिए क़त्ल कर देने की धमकियां देने वाले, हिंसा की धमकियां देने वाले लोगों को नज़रअंदाज़ करने की ग़लती अगर कोई सरकार करती है, तो इसका खामियाजा कई बेगुनाह लोगों को भुगतना पड़ जाता है।

ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री हिन्दुओं और सिखों की हिफाजत के लिए फ़िक्रमंद थी। पुलिस के आला अफसरों ने हिन्दुओं और सिखों से बात की और यह फैसला हुआ कि बहुत दूर के गांवें में जहां किसी गांव में कोई एक या दो घर ही हिन्दुओं या सिखों के थे, उनको वहां से निकालकर ऐबटाबाद लाया जाए, जिसको वह महफ़ूज़ मान रहे थे।

जिला हजारा के ऐसे कई पहाड़ी गांव थे, जो ऐबटाबाद, हरीपुर, या मानसेहरा से काफी दूर थे और वहां पर एक-एक, दो-दो, या ऐसे ही बहुत कम परिवार हिन्दुओं और सिखों के रहते थे। जाहिर था कि दूर-दराज के ऐसे गावें और बस्तियों में रह रहे हिन्दु और सिक्खों को बहुत बड़ा खतरा था। यह फैसला हुआ कि उनको वहां उनके गाँवें से निकालकर एबटाबाद ले आया जाए।

ऐसे ही जब 12 दिसंबर 1946 को जबोड़ी-डाडर के कुछ परिवारों के लोगों को लारी के ज़रिये, बस के ज़रिये उनके गांव से निकालकर ऐबटाबाद की तरफ ले जाया जा रहा था, तो सुनकियारी से लगभग 5 मील की दूरी पर नदी के पुल पर बस को रोककर हिन्दुओं और सिखों को तेज़धार हथियारों से मारना शुरू कर दिया। उनका सारा

माल असबाब लूट लिया गया। कुल 16 मर्द, औरतें और बच्चे बेरहमी से क़त्ल कर दिए गए और बाकी बहुत बुरी तरह से ज़ख्मी हुए।

हवेलियां कसबे में मुस्लिम लीग और मुस्लिम लीग की नेशनल गार्ड वालों ने एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला। यह जुलूस रेलवे स्टेशन पर पहुंच कर एक बहुत बड़े जलसे के रूप में बदल गया। इस जलसे को मुखातिब करते हुए लीग के कई लोकल रहनुमाओं, मज़हबी जनूनी जागीरदारों, और कट्टरपंथियों ने सूबे की डॉक्टर ख़ान साहिब की ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री की निंदा की। जो रहम दिल लोकल मुसलमान हिन्दुओं और सिखों की मदद कर रहे थे, जलसे में उनकी भी निन्दा की गई और उनके लिए बहुत भद्दे अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल किया। निहायत झूठी मगर बहुत भड़काऊ तकरीरें सुन-सुनकर वहां इकट्ठा हुये लोगों की भीड़ का ख़ून खौलने लगा। वहीं पर फैसला हुया कि हिन्दुओं और मुसलमानों पर हर गांव में, हर शहर में हमला किया जाएगा। उनके कत्ल किए जाएंगे। उनकी जायदाद को लूट लिया जाएगा। उनके घरों, गुरुद्वारों और मंदिरों को जला दिया जाएगा।

इस के बाद हज़ारा ज़िले में हवेलियाँ, झंगडा, राजोइया, गौड़ा, फुलगरां, दमदौड, बांडा, पीरकोट, पिपल, मुजाब, जाबा, मोहाडी, धणकां-कड़छाँ, नारा, सतोड़ा, औगल, घगडोतर, मोहरी वडभैंन, दवाल, अखरूटा, नगरी मकोल, भजूर, लोरा, कुटल, घड़ागा, बजाड़ियां, ढूढ़ियाल, जलो, बफा, ओगी, अखरूटा, गढ़ी हबीबुल्लाह, कुटली जैसे गांवें और मलाछ के इलाके में 7-8 बिखरी हुई बस्तियों में रहने वाले हिन्दुओं और सिखों पर हमले कर के क़त्लेआम किया गया।

भाटा गांव में हुये क़त्ल-ए-आम में कुल 124 सिख शहीद हुये। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के लिये लिखी गुरबचन सिंघ तालिब की रिपोर्ट में भाटा में मारे गये सिखों की गिनती 116 बताई

गई है। हज़ारा के गांव ओगल में पैदा हुये प्रेम सिंघ सासन ने भाटा में शहीद सिखों की तादाद 124 लिखी है। प्रेम सिंघ सासन के पास इन 124 सिखों के नामों की लिस्ट भी थी। इसलिये मैंने प्रेम सिंघ सासन की लिखी तादाद को ही सही माना है।

ज़िला हज़ारा के क़त्लेआम में सैंकड़ों लोग मारे गये। अगर यह तादाद पोठोहार के क़त्लेआम की तरह हज़ारों में नहीं पहुंची, तो इस का श्रेय उन सैंकड़ों मुसलमानों को देना चाहिए, जिन्होंने मुस्लिम लीग द्वारा चलाई गई नफ़रत की आंधी में भी इन्सानियत का परचम लहराए रखा।

ज़िला हज़ारा में रहने वाले ख़ुदाई ख़िदमतगार मुसलमानों और दूसरे निष्पक्ष मुसलमानों ने इस क़त्लेआम में अपनी जान पर खेलकर भी हिन्दुओं और सिखों को बचाने के जो प्रयास किये, वे बहुत ही सराहनीय है। मुसलमान पुलिस अफ़सरों और सिपाहियों ने भी अपनी ज़िम्मेदारी पूरी ईमानदारी से निभा कर सैंकड़ों हिन्दुओं और सिखों की जानें बचाईं।

निष्पक्ष मुसलमानों द्वारा मज़लूमों की जानें बचाने की एक उदाहरण हज़ारा के एक गांव सतोड़ा की है।

ख़ूबसूरत वादी में हरो नदी के किनारे एक गांव सतोड़ा बसा हुआ है। खखर, थोहर, कोट, भनखाँ, छोटी पांडी, बड़ी पांडी, और ढेरी वग़ैरह सतोड़ा की ही बस्तियां थीं।

यहां तक़रीबन 55 हिन्दू और सिख ख़ानदान रहते थे। हज़ारा में हो रहे हिन्दुओं और सिखों के क़त्लेआम की ख़बरें सुन कर सिखों ने ढेरी की बस्ती के गुरद्वारे पर अपनी हिफ़ाज़त के लिये मोर्चा बना लिया। ढेरी का सीधा-सा मतलब पहाड़ी ही होता है। सतोड़ा वादी की यह बस्ती सतोड़ा की बाक़ी बस्तियों के मुक़ाबले में ऊँची जगह पर थी। ढेरी की बस्ती में रहने वाले हिन्दुओं और सिखों ने सतोड़ा की

दूसरी बस्तियों में रहने वाले हिन्दुओं और सिखों को भी ढेरी पर ही बुला लिया। सतोड़ा के सभी हिन्दू और सिख अपने-अपने घर छोड़ कर ढेरी के गुरुद्वारे में चले गये, जिसको एक मज़बूत मोर्चे का रूप दे दिया गया था।

जब दंगाइयों ने ढेरी को घेरना शुरू किया, तो सतोड़ा के मुसलमानों ने उनको रोकने की कोशिश की। सतोड़ा के मुसलमानों ने दंगाइयों को यह झूठ कह कर ही डरा दिया कि सिखों के पास इतना असलाह और गोला-बारूद है कि वे सभी हमलावरों को मार सकते हैं।

दूसरी तरफ गांव के ही दो मुसलमान बहुत तेजी से इलाके के पुलिस स्टेशन चले गए और वहां से बहुत सारी पुलिस फोर्स ले आए। पुलिस के आने से दंगाई काफ़ी पीछे हट गये।

पुलिस ने हिंदू और सिक्खों परिवारों को घोड़ा गली पहुंचा दिया। उस ज़माने में सतोड़ा तक कोई पक्की सड़क नहीं जाती थी। गांव के मुसलमानों ने सिखों और हिंदुओं के ज़रूरी सामान को अपने सिरों पर उठाकर घोड़ा गली तक पहुंचाया।

दिसम्बर 1946 के आख़िर और जनवरी 1947 की शुरुआत में हवेलियाँ और आस-पास के इलाकों में ऐसे हालात हो चुके थे कि हिन्दुओं और सिखों का वहाँ रुके रहना लगभग नामुमकिन हो गया। लगभग सभी सिख और हिन्दू अपने घरों को छोड़कर या तो शरणार्थी-शिविरों में जा चुके थे, या वे हज़ारा ही छोड़कर पंजाब चले गये थे।

कुछ महीनों के बाद कुछ हिन्दू और सिख हालात बदलने पर फिर वापिस अपने घरों को लौटे। उनको उम्मीद थी कि हालात पूरी तरह से सुधर जायेंगे। मेरे दादा जी भी थोड़ी देर के लिये अपने पुश्तैनी गाँव मुहाड़ी आये, लेकिन बिगड़ते हालात देखकर फिर वापस रावलपिण्डी चले गये।

3 मार्च, 1947 के बाद पंजाब की राजधानी लाहौर में भी हालात बिगड़ने लगे। 4 मार्च से लाहौर में हिन्दू-सिख और मुसलमान भीड़ों के बीच दंगे होने लगे। कई लोग क़त्ल कर दिये गये।

1947 का अगस्त महीना आते-आते यह क़त्ल-ए-आम पूर्वी-पंजाब में भी फैल गया। यह वह इलाक़ा है, जो आज भारत का हिस्सा है। पूर्वी पंजाब का क़त्ल-ए-आम मुख्यतः मुसलमानों का क़त्ल-ए-आम था। शहरों के शहर और गाँवें के गाँव मुसलमानों से ख़ाली कर दिये गये। 1947 में मुसलमानों के सबसे ज़्यादा क़त्ल पूर्वी पंजाब में ही हुये।

अगस्त 1947 में पूर्वी पंजाब में मुसलमानों के क़त्ल-ए-आम के बाद जब यहाँ से ज़बरदस्ती निकाल दिये गये मुसलमान शरणार्थी पाकिस्तान गये, तो इससे वहाँ रहने वाले हिन्दुओं और सिखों पर हमलों ने और भी ख़तरनाक शक्ल अख़्तियार कर ली।

पूर्वी पंजाब में 1947 में मुसलमानों के क़त्ल-ए-आम का असर हज़ारा के बचे-खुचे हिन्दुओं और सिखों पर पड़ना लाज़मी था।

दिसम्बर 1946 और जनवरी 1947 में हज़ारा में हुये क़त्ल-ए-आम से बच गये कुछ हिन्दू और सिख वापिस अपने घरों को चले गये थे। इन बदकिस्मत लोगों के क़त्ल-ए-आम का एक और दौर अगस्त 1947 के आख़िर में फिर चला।

वहाँ की अखबारों में पूर्वी पंजाब और इंडिया में ही दूसरी जगहों पर हो रहे मुसलमानों के क़त्ल-ए-आम की खबरें लगातार छप रही थीं। इससे हिन्दुओं और सिखों के ख़िलाफ़ माहौल और ख़राब हो गया था।

सूबा सरहद के बाक़ी ज़िलों में क़त्लेआम

यहाँ सूबा सरहद के दूसरे ज़िलों में मुस्लिम लीग द्वारा किए गए फ़साद का बहुत संक्षेप में ज़िक्र करना भी ठीक रहेगा।

मार्च, 1947 में कई ज़िलों में हिंसा फैल गई।

सूबा सरहद की ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री में मंत्री क़ाज़ी अताउल्लाह ख़ान ने एक बयान में बताया था कि पंजाब से एक नौजवान सरहद में आया था और उसने यहाँ कई भड़काऊ भाषण दिए। उसने स्थानक मुस्लिम लीग के नेताओं से बैठकें कीं। उसने लोगों को भड़काया कि अगर कुछ और नहीं कर सकते, तो कम-अज़-कम हिन्दुओं के घरों को आग ही लगा दो और उनका सामान लूट लो। इस के बाद मुस्लिम लीग के स्थानक कार्यकर्ताओं ने आगज़नी और लूटमार शुरू कर दी।

30 मार्च, 1947 को पेशावर के बाबजानी बाजार में दो दुकानदारों को उस वक़्त गोलियां मार कर ज़ख़्मी कर दिया गया, जब वहाँ से मुस्लिम लीग का एक जलूस निकल रहा था।

पेशावर छावनी में ख़ालसा स्कूल के पीछे लकड़ी के एक गोदाम को आग लगाने की कोशिश की गई।

ज़िला हज़ारा की काग़न वादी में 4 दुकानें जला दीं गईं। डेरा इस्माइल ख़ान में एक हिन्दू को अग़वा कर लिया गया।

अप्रैल आते-आते हज़ारों लोगों को सूबा सरहद से बाहर निकाल कर पंजाब आदि जगहों पर पहुंचाया जा चुका था।

2 अप्रैल को हिन्दू-सिख मुसाफ़िरों को कोहाट से रावलपिण्डी ले जा रही रेलगाड़ी पर कोहाट से 17 मील दूर गोरज़ई में भीड़ द्वारा हमला किया गया, जिसमें 6 लोग मारे गये और 20 ज़ख़्मी हुये।

उसी दिन कोहाट में एक हिन्दू को छुरा मार कर बुरी तरह से ज़ख़्मी कर दिया गया।

हज़ारों हिन्दू-सिख सूबा सरहद छोड़-छोड़कर जाने लगे। मार्च के महीने में पेशावर की लगभग एक चौथाई हिन्दू-सिख आबादी पेशावर छोड़ कर पंजाब और भारत के दूसरे हिस्सों में चली गई।

15 अप्रैल को डेरा इस्माइल ख़ान में मुस्लिम लीग के दफ़्तर से एक जलूस निकाला गया। इस में शामिल लोगों ने अदालत और डाकघर में तोड़फोड़ की और शहर के कई घरों और दुकानों को आग लगा दी।

16 अप्रैल को पाओरा गाँव में 3 लोगों का क़त्ल कर दिया गया। 54 दुकानों और घरों को जला दिया गया।

17 अप्रैल को डेरा इस्माइल ख़ान में 10 लोगों को मार डाला गया। 400 के लगभग दुकानों और घरों को जलाया गया।

अप्रैल महीने तक पेशावर में तक़रीबन 100 हिन्दू, सिख क़त्ल किये जा चुके थे। अनेक ज़ख़्मी हुये थे।

22 अप्रैल को पाओरा गाँव से हिन्दुओं को बचा कर डेरा इस्माइल ख़ान लिजा रही एक पुलिस पार्टी के साथ हुये दंगाइयों की मुठभेड़ में 8 लोग मारे गये। कुलाची में कुछ दुकानों और घरों को जला दिया गया।

29 अप्रैल को फिर कुलाची में आगज़नी हुई और 2 हिन्दू क़त्ल कर दिये गये। गोमल में भी दो हिन्दू मार दिये गये और घरों को आग लगा दी गई।

6 मई, 1947 को ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने एक बयान में सूबा सरहद के उस वक़्त के गवर्नर सर ओल्फ़ कैरो (Sir Olaf

Caroe) पर इल्ज़ाम लगाया कि वे सूबे में ख़ूनख़राबा कराने में मुस्लिम लीग से मिले हुये थे। ख़ान साहिब ने कहा कि गवर्नर चाहता था कि सूबे की सत्ता किसी तरह से मुस्लिम लीग के हवाले की जा सके। मुस्लिम लीग के लोग बेगुनाह मर्दों, औरतों, और बच्चों के क़त्ल करने में लगे हुये थे। ख़ान साहिब ने कहा कि अगर गवर्नर चाहे, तो दो दिन में सारी बे-क़ानूनी समाप्त हो सकती है, पर यह हो कैसे, जब गवर्नर ख़ुद लीग की हिंसक और फ़िरकापरस्त लहर के नेतृत्व कर रहा था।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब का बयान ग़लत नहीं था। सूबा सरहद में ब्रिटिश गवर्नर, अंग्रेज़-परस्त अफ़सर-शाही, और मुस्लिम लीग मिल कर अपने सांझा मिशन के लिये काम कर रहे थे और उनका मिशन था ख़ुदाई ख़िदमतगार मूवमेंट और उनकी मिनिस्ट्री का ज़्यादा से ज़्यादा नुक़सान करना। इस मिशन में सूबा सरहद के हिन्दुओं और सिखों की बलि चढ़ाई जा रही थी। उनके क़त्ल करना, अग़वा करना, आगज़नी करना, लूटमार करना, यह सब मुस्लिम लीग को सही लग रहा था।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों और इण्डियन नेशनल कांग्रेस की तरफ़ से गवर्नर सर ओल्फ़ कैरो की हो रही तीखी आलोचना के चलते उन्हें गवर्नर के पद से हटा दिया गया और 19 जून, 1947 को जनरल सर रॉब मेगरेगर लॉकहार्ट (General Sir Rob McGregor MacDonald Lockhart) को सूबा सरहद का कार्यकारी गवर्नर बनाया गया।

हिन्दुओं और सिखों के ख़िलाफ़ मुस्लिम लीग की इस पागल हिंसा को रोकने के ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री के उठाए क़दम साहसी थे, लेकिन कम पुलिस फ़ोर्स और अंग्रेज़-परस्त अफ़सरशाही की अमानवीय कर्तव्य-विमुखता के आगे ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री कुछ हद तक बे-बस सी हो गई थी।

पुलिस नफ़री की कमी के चलते ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने ख़ुद मैदान में उतरने का साहसी फ़ैसला लिया। सबसे पहले पेशावर में वर्दीधारी ख़ुदाई ख़िदमतगार शहर की सड़कों और गलियों में परेड करते हुये निकले।

इससे शहर के हिन्दुओं और सिखों में फैला ख़ौफ़ काफ़ी कम हुआ। कई दिनों तक अपने घरों में बंद रहने के बाद ख़ुदाई ख़िदमतगारों की परेड के चलते वे अपनों घरों से बाहर निकले।

सूबा सरहद में जगह-जगह क़त्ल, औरतों और बच्चों को अग़वा, और आगज़नी करते हथियारबन्द गुन्डों ने अहिंसा के सिपाही आम ख़ुदाई ख़िदमतगारों को मजबूर कर दिया कि वे गुन्डों का आमने-सामने मुक़ाबला करने के लिये सड़कों पर उतर आएं।

सूबा सरहद की गलियों ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के इन ख़ुदाई ख़िदमतगारों को अपने हाथों में घरेलू और खेती के औजार लिये जगह-जगह हिन्दुओं और सिखों की हिफ़ाज़त के लिये मैदान में निकलते देखा।

पाकिस्तान मूवमेंट में सूबा सरहद में हिन्दुओं और सिखों के ख़िलाफ़ हिंसा पश्चिमी पंजाब आदि से कम होने का सबसे ज़्यादा श्रेय डॉक्टर ख़ान साहिब के नेतृत्व वाली ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री और सड़कों पर उतरे आम ख़ुदाई ख़िदमतगारों को दिया जाना चाहिए।

इसके साथ ही अफ़रीदी जिर्गा जैसी परंपरागत क़बाइली पंचायतें भी प्रशंसा की पात्र हैं, जिन्होंने उस मुश्किल वक़्त में हिन्दुओं और सिखों को बंदूकें आदि हथियार देकर मज़बूत स्थिति में खड़ा किया।

8 दिसम्बर, 1946 से लेकर अगस्त, 1947 में मुहम्मद अली जिन्नाह द्वारा बरखास्त किये जाने तक ख़ुदाई ख़िदमतगार

मिनिस्ट्री ने हिंसा का शिकार बनाए जा रहे हिन्दुओं और सिखों को पुलिस थानों, शरणार्थी-शिविरों और दूसरी सुरक्षित जगहों तक पहुंचाने के लिये बहुत क़ाबिल-ए-तारीफ़ काम किया।

सूबा सरहद में रायशुमारी (रेफरेंडम)

लॉर्ड माउंटबैटन के प्रसिद्ध 3 जून, 1947 के प्लान ने ब्रिटिश इण्डिया को दो अलग-अलग देशों में बांटने की तजवीज़ पेश की। इस को इण्डियन नेशनल कांग्रेस और आल इण्डिया मुस्लिम लीग ने मन्ज़ूर कर लिया।

लॉर्ड माउंटबैटन के इस प्लान में सूबा सरहद में रायशुमारी (रेफरेंडम) कराने का प्रावधान था, जिसमें लोगों को इण्डिया या पाकिस्तान में से किसी एक के लिये मतदान करने की ऑप्शन थी।

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब और ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने ब्रिटिश इण्डिया के बंटवारे की तजवीज़ का विरोध किया।

ब्रिटिश इण्डिया के बंटवारे का विरोध करने वालों में मुसलमानों की कई पार्टियां शामिल थीं। इनमें ख़ुदाई ख़िदमतगारों के इलावा जमायत-ए-उलेमा-ए-हिन्द, मजलिस-ए-अहरार-उल-इस्लाम, अन्जुमन-ए-वतन बलोचिस्तान, ऑल इण्डिया मोमिन कॉन्फ्रेंस, आल इण्डिया शिया पोलिटिकल कॉन्फ्रेंस आदि शामिल थे।

इन सभी पार्टियों से जुड़े मुसलमानों की तादाद मुस्लिम लीग से जुड़े मुसलमानों की तादाद से ज़्यादा ही थी, लेकिन ब्रिटिश हुक्मरान ऐसी सियासी चाल पूरी कामयाबी से चल गये, जिस से आल इण्डिया मुस्लिम लीग को ब्रिटिश इण्डिया के मुसलमानों की इकलौती प्रतिनिधि पार्टी मान लिया गया।

21 जून, 1947 को इपी के फ़क़ीर और प्रसिद्ध योद्धा हाजी मिर्ज़ाली ख़ान वज़ीर साहिब, अन्जुमन-ए-वतन बलोचिस्तान के नेता और अपनी आधी ज़िन्दगी ब्रिटिश इण्डिया और पाकिस्तान की जेलों में गुज़ारने वाले पश्तून राष्ट्रवादी नेता अब्दुल समद ख़ान साहिब (ख़ान शहीद), सूबा सरहद की सूबाई असेम्बली के कुछ सदस्यों, और अनेक क़बाइली नेताओं के साथ ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के नेतृत्व में ख़ुदाई ख़िदमतगारों और दूसरे पश्तूनों ने बन्नू में एक लोया जिरगा (क़बाइली महा-पंचायत) की।

इस लोया जिरगा में एक प्रस्ताव पारित कर के यह माँग रखी कि इण्डिया या पाकिस्तान के साथ जाने की ऑप्शन के साथ एक ऑप्शन पश्तून-बहुल इलाक़ों को मिलाकर आज़ाद पश्तूनिस्तान बनाए जाने की भी हो।

ब्रिटिश सरकार ने आपने निजी हितों को मुख्य रखते हुये लोया जिरगा की यह मांग मानने से इनकार कर दिया।

इस पर गान्धी जी की सलाह के बाद ख़ुदाई ख़िदमतगारों ने रेफरेंडम का बहिष्कार करने का ऐलान कर दिया।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों के बहिष्कार के बीच हुये इस रेफरेंडम के नतीजे 20 जुलाई, 1947 को जारी किये गये। सूबा सरहद के कुल मतदाता 572,798 थे, जिन में से 292,118 लोगों (51%) ने इस रेफरेंडम में अपने वोट डाले। इन 292,118 लोगों में से 289,244 लोगों ने पाकिस्तान के पक्ष में वोट दिये। इस तरह वोट डालने वाले लोगों के 99.02% हिस्से ने पाकिस्तान को चुना। भारत के पक्ष में कुल 2,874 लोगों (0.98%) ने वोट दिये।

रायशुमारी के नतीजों का गहराई से अध्ययन किया जाए, तो हम बहुत आसानी से इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि रायशुमारी का बहिष्कार करना एक ग़लत फ़ैसला था।

यहाँ एक बात और समझनी ज़रूरी है। पंजाब का बंटवारा किया जाए या नहीं, इस का फ़ैसला पंजाब की सूबाई असेम्बली के सदस्यों ने किया था। इस की वजह यह थी कि पंजाब की असेम्बली के सदस्य अभी एक साल पहले ही आम चुनावें में मतदाताओं द्‌वारा चुन कर आए थे, इस लिये वे वे यह फ़ैसला लेने के अधिकारी मान लिये गये कि पंजाब का बंटवारा किया जाए और पूर्वी पंजाब भारत में और पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में जाए। पंजाब में उस मुद्‌दे पर रेफरेंडम कराने की कोई ज़रूरत नहीं समझी गई।

इसी तरह ही, सिन्ध सूबे की असेम्बली ने बहुमत से प्रस्ताव पारित कर के पाकिस्तान में जाने का फ़ैसला लिया था।

लेकिन जब सूबा सरहद की बारी आई, तो यहाँ की सूबाई असेम्बली को यह फ़ैसला करने का कोई हक़ नहीं दिया गया कि सूबा सरहद भारत में शामिल हो या पाकिस्तान में। यह फ़ैसला करने के लिये रेफरेंडम का सहारा लिया गया

कांग्रेस-ख़ुदाई ख़िदमतगार मिनिस्ट्री बरख़ास्त

15 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान के रूप में एक नया देश वजूद में आया। सूबा सरहद में ख़ुदाई ख़िदमतगारों के बहिष्कार के बीच हुए रेफरेंडम के नतीजों के अनुसार सूबा सरहद पाकिस्तान में शामिल कर दिया गया।

पाकिस्तान बनते ही पहले गवर्नर-जनरल मुहम्मद अली जिन्नाह ने सूबा सरहद के गवर्नर रह चुके अँग्रेज़ सर जॉर्ज कनिंघम को नये बने पाकिस्तान में सूबा सरहद का पहला गवर्नर बना दिया। सर कनिंघम ख़ुदाई ख़िदमतगारों के विरोधी तो थे ही।

जिन्नाह चाहते, तो किसी पश्तून को भी सूबा सरहद का गवर्नर बना सकते थे। सूबा सरहद के कई पश्तून मुस्लिम लीग में थे ही। लेकिन जिन्नाह ने एक अँग्रेज़ को चुना।

कुछ दिनों के बाद ही, जिन्नाह के कहने पर गवर्नर कनिंघम ने सूबा सरहद में लोगों द्वारा पिछले साल ही चुनी हुई और ख़ुदाई ख़िदमतगारों की डॉक्टर ख़ान साहिब के नेतृत्व वाली सूबाई सरकार को बर्खास्त कर दिया।

23 अगस्त, 1947 को मुस्लिम लीग के अब्दुल क़य्यूम ख़ान कश्मीरी को सूबा सरहद का नया वज़ीर-ए-आला बना दिया गया।

बाबड़ा क़त्लेआम

अप्रैल, 1948 में एक और अंग्रेज़ सर एम्ब्रोज़ फ्लक्स डंडास को सूबा सरहद का गवर्नर बना दिया गया। सर एम्ब्रोज़ फ्लक्स डंडास ने एक ऑर्डिनेंस जारी करके सूबाई हुकूमत को यह अख़्तियार दे दिया कि वह किसी को भी बिना वजह बताये हिरासत में ले सकती है और उसकी जायदाद ज़ब्त कर सकती है।

ताक़त के नशे में चूर नई सरकार ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब समेत ख़ुदाई ख़िदमतगार तहरीक के कई रहनुमाओं को जेलों में डाल दिया।

गवर्नर सर एम्ब्रोज़ फ्लक्स डंडास की तरफ़ से जारी किये गये ऑर्डिनेंस और अपने रहनुमाओं की गिरफ़्तारी के ख़िलाफ़ ख़ुदाई ख़िदमतगार कारकुनों ने 12 अगस्त, 1948 को चारसदा से बाबड़ा ग्राउंड तक एक प्रोटेस्ट मार्च निकाला।

जब यह प्रोटेस्ट मार्च बाबड़ा ग्राउंड पहुँचा, तो पुलिस ने इन निहत्थे ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर गोलियां चलानी शुरू कर दीं। ख़ुदाई ख़िदमतगार इन गोलियों का निशाना बनते गये और शहीद होते गये।

नज़दीक़ के घरों की कुछ औरतों को पता चला कि पुलिस निहत्थे ख़ुदाई ख़िदमतगारों पर गोलियां चला रही है, तो वे तेज़ी से बाबड़ा ग्राउंड पहुँची। वे अपने सिरों पर क़ुरान रखकर ख़ुदाई ख़िदमतगारों और पुलिस के बीच खड़ी हो गईं और पुलिस वालों से गुज़ारिश करने लगीं कि अमनपसंद निहत्थे लोगों पर गोलियां न चलायें।

इस्लाम के नाम पर एक साल पहले ही बने पाकिस्तान की पुलिस ने अपने सिरों पर क़ुरान रखकर खड़ी इन मुसलमान औरतों पर भी रहम नहीं किया और उनको भी अपनी गोलियों का निशाना बना दिया। वे सभी औरतें शहीद हो गईं।

शहीद हुये ख़ुदाई ख़िदमतगारों की लाशों को उठा-उठाकर नदी में बहा दिया गया। कई ज़ख़्मियों को भी नदी में फेंक दिया गया।

सरकारी ताक़त का नशा अब्दुल क़य्यूम ख़ान कश्मीरी को ऐसा चढ़ा कि ज़ख़्मियों और शहीद हुये लोगों के ख़ानदानों से उन पर चलाई गईं गोलियों की क़ीमत वसूलने के लिये भी जुर्माना लगाया गया। इसी वजह से कई शहीदों के परिवारों ने यह बात ही छुपा ली थी कि उनके घर का कोई सदस्य इस क़त्लेआम में शहीद हुआ था।

ख़ुदाई ख़िदमतगारों के इस क़त्लेआम में शहीद हुये लोगों की सही-सही तादाद मालूम नहीं है, क्योंकि कुछ की तो लाशें नदी में बहा देने के बाद मिली ही नहीं और कई शहीदों के परिवारों ने यह बात ही छुपा ली थी कि उनके घर का कोई सदस्य इस क़त्लेआम में शहीद हुआ था। अलग-अलग लोगों के मुताबिक़ सिर पर क़ुरान रखकर शहीद होने वाली औरतों समेत 400 से लेकर 600 तक लोग

इस क़त्लेआम में मारे गये। एक हज़ार से ज़्यादा लोग ज़ख़्मी भी हुये।

इसके बाद ख़ुदाई ख़िदमतगार तहरीक पर पाबन्दी लगा दी गई। उनके दफ़्तर को तबाह कर दिया गया।

बाद में सूबा सरहद की असेम्बली में वज़ीर-ए-आला अब्दुल क़य्यूम ख़ान कश्मीरी ने कहा था कि वहाँ मौजूद बाक़ी बचे लोग किस्मत वाले थे कि पुलिस का असलाह ख़त्म हो गया था, नहीं तो एक भी इन्सान नहीं बचता।

असेम्बली में मौजूद चार ख़ुदाई ख़िदमतगार सदस्यों की तरफ़ इशारा करते हुये अब्दुल क़य्यूम कश्मीरी ने कहा कि अगर ये भी मर जाते, तो भी सरकार को कोई परवाह नहीं थी।

बाबड़ा में हुये ख़ुदाई ख़िदमतगारों के इस क़त्लेआम की तुलना 23 अप्रैल, 1930 को पेशावर के क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार में हुये ख़ुदाई ख़िदमतगारों के क़त्लेआम से की जा सकती है। तब क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार में भी हाथों में क़ुरान उठाये लोगों को गोलियां मार कर शहीद किया गया था। दोनों ही जगह बिल्कुल निहत्थे ख़ुदाई ख़िदमतगारों को शहीद किया गया था। फ़र्क़ बस यह था कि क़िस्सा ख़्वानी बाज़ार क़त्लेआम के वक़्त ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत थी और बाबड़ा क़त्लेआम के वक़्त पाकिस्तानी हुकूमत थी, जिसके गवर्नर-जनरल ख़ुद क़ायद-ए-आज़म और पाकिस्तान के बाबा-ए-क़ौम मुहम्मद अली जिन्नाह थे।

बाद में पाकिस्तान के वज़ीर-ए-आज़म बने हुसैन शहीद सुहरवर्दी ने बाबड़ा क़त्लेआम की तुलना 1919 में अमृतसर के जल्लियाँ वाला बाग़ क़त्लेआम से करते हुये कहा था कि बाबड़ा में हुये ज़ुल्म जल्लियाँ वाला बाग़ क़त्लेआम से भी बढ़कर थे।

हुसैन शहीद सुहृवर्दी की यह बात ठीक भी है। जल्लियाँ वाला बाग़ क़त्लेआम के शिकार लोगों को ब्रिटिश हुकूमत ने मुआवज़ा भी दिया था, जबकि बाबड़ा क़त्लेआम के मज़लूमों के परिवार वालों को जुर्माना लगाया गया था।

बाबड़ा में ख़ुदाई ख़िदमतगारों का यह क़त्लेआम 12 अगस्त, 1948 को हुआ था। मुझे हैरानी इस बात की भी है कि निहत्थे ख़ुदाई ख़िदमतगारों का यह क़त्लेआम उन्हीं अब्दुल क़य्यूम ख़ान कश्मीरी के हुक्म पर हुआ, जो सिर्फ तीन साल पहले तक ख़ुदाई ख़िदमतगारों, ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब और डॉक्टर ख़ान साहिब की बहुत तारीफ़ करने वाले आदमी थे। तब वह इण्डियन नेशनल काँग्रेस में हुआ करते थे।

1945 में अब्दुल क़य्यूम ने अपनी किताब 'गोल्ड एंड गन्स ऑन द पठान फ़्रंटियर' (Gold and Guns on the Pathan Frontier) प्रकाशित करवाई थी। उसमें उन्होंने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब और डॉक्टर ख़ान साहिब की बहुत तारीफ़ की थी। यहाँ तक कि उस क़िताब में उन्होंने मुस्लिम लीग की आलोचना भी की थी। उन्होंने कई बातें ऐसी लिखी थीं, जो ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब और पश्तून क़ौमपरस्तों के नुक़्ता निगाह से तो बिल्कुल मेल खाती थीं, पर ब्रिटिश इण्डियन हुकूमत या बाद में बने पाकिस्तान की हुकूमत के नुक़्ता निगाह से मेल नहीं खाती थीं।

इण्डियन नेशनल काँग्रेस छोड़कर 1945 में मुस्लिम लीग में शामिल होते ही अब्दुल क़य्यूम ख़ान कश्मीरी के विचार एक दम से बदल गये।

पाकिस्तान बनते ही गवर्नर-जनरल जिन्नाह के कहने पर सूबा सरहद के गवर्नर कनिंघम ने लोगों की चुनी हुई सूबाई सरकार को बर्खास्त कर दिया और 23 अगस्त, 1947 को अब्दुल क़य्यूम ख़ान कश्मीरी को सूबा सरहद का नया वज़ीर-ए-आला बना दिया गया।

वज़ीर-ए-आला बनते ही अब्दुल क़य्यूम को ख़ुदाई ख़िदमतगारों में भी कमियां नज़र आने लगीं और ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब और डॉक्टर ख़ान साहिब में भी।

यहाँ तक कि उन्होंने अपनी ही लिखी किताब 'गोल्ड एंड गन्स ऑन द पठान फ़्रंटियर' (Gold and Guns on the Pathan Frontier) पर ख़ुद ही पाबन्दी लगा दी। पाबन्दी इसलिये लगा दी, क्योंकि उसमें उन्होंने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब और डॉक्टर ख़ान साहिब की तारीफ़ की हुई थी।

नये बने पाकिस्तान में

बदले हुये हालात में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने 23 फ़रवरी, 1948 को पाकिस्तानी कांस्टीट्यूइंट असेम्बली में पाकिस्तान के प्रति वफ़ादारी की शपथ ली।

उसके बाद उन्होंने पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मुहम्मद अली जिन्नाह के साथ सम्बन्ध सुधारने की कोशिश की। कहा जाता है कि सूबा सरहद के मुख्यमंत्री अब्दुल क़य्यूम खान कश्मीरी के कारण यह न हो सका। अब्दुल क़य्यूम खान ने जिन्नाह को यह कह कर डरा दिया कि ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब जिन्नाह के क़त्ल की साज़िश बना रहे हैं।

8 मई, 1948 को ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने पाकिस्तान आज़ाद पार्टी के नाम से एक नई राजनीतिक पार्टी बनाई। उसके बाद पाकिस्तान सरकार ने 1948 से लेकर 1954 तक उन्हें उनके घर में क़ैद (house arrest) रखा।

डॉक्टर ख़ान साहिब का क़त्ल

9 मई, 1958 को सुबह साढ़े आठ बजे अत्ता मुहम्मद नाम के एक आदमी ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब के बड़े भाई, ख़ुदाई ख़िदमतगार तहरीक के नेता और सूबा सरहद के पूर्व मुख्यमंत्री डॉक्टर ख़ान साहिब (ख़ान अब्दुल जब्बार ख़ान साहिब) का क़त्ल कर दिया।

डॉक्टर ख़ान साहिब लाहौर में अपने बेटे सादुल्लाह ख़ान के घर के बाग़ीचे में बैठे हुये थे, जब अत्ता मुहम्मद ने उनकी हत्या की।

डॉक्टर ख़ान साहिब की मृतक देह को उनके पुश्तैनी गाँव उतमनज़ई में सपुर्द-ए-ख़ाक किया गया।

अल्लामा मशरिक़ी पर इस क़त्ल की साज़िश में शामिल होने का इल्ज़ाम लगा, लेकिन यह इल्ज़ाम साबित नहीं हो सका।

'भारत रत्न'

'वन यूनिट स्कीम' (One Unit Scheme) का विरोध करने पर पाकिस्तान सरकार ने ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब को फिर से गिरफ़्तार कर लिया। वह 1957 तक हिरासत में ही रहे। 1958 में उन्हें फिर गिरफ़्तार कर लिया गया और 1964 तक क़ैद में ही रहे। 1964 में भी उनकी बीमारी की वजह से रिहा किया गया, ताकि वे विदेश जाकर अपना इलाज करा सकें।

इन्दिरा गांधी के साथ

उसके बाद वे अफ़ग़ानिस्तान चले गये और 1972 तक वहीं रहे। सूबा सरहद में नेशनल अवामी पार्टी की सरकार बनने पर वे 1972 में वापिस पाकिस्तान आए।

नवम्बर, 1973 में उन्हें ज़ुल्फ़िकार अली भुट्टो की सरकार ने गिरफ़्तार कर लिया।

1967 में उन्हें जवाहर लाल नेहरू अवार्ड दिया गया। 1985 में वे इण्डियन नेशनल कांग्रेस के गठन के शताब्दी समारोह में शामिल होने के लिये भारत आए। 1987 में वे तब फिर भारत आए, जब कृतज्ञ राष्ट्र की तरफ़ से भारत सरकार ने उन्हें देश के सर्वेच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से सम्मानित किया, हालाँकि यह सम्मान उनको बहुत पहले ही दे दिया जाना चाहिये था।

महामानव की अन्तिम यात्रा

20 जनवरी, 1988 वह दिन था, जब भारतीय आज़ादी संग्राम के महानायक, पश्तूनों के 'बाचा ख़ान' (बादशाह ख़ान) और भारतीयों के 'सरहदी गान्धी' ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान साहिब ने इस नश्वर संसार से विदा ली।

ख़ान साहिब की मौत पेशावर में घर में नज़रबन्दी के दौरान ही हुई। उनकी मौत के कुछ घण्टों के अन्दर ही भारत के उस वक़्त के प्रधानमंत्री राजीव गान्धी अपने कुछ मंत्रियों के साथ पेशावर पहुँचे और सभी भारतीयों की तरफ़ से ख़ान साहिब को श्रद्धांजलि दी। भारत सरकार ने ख़ान साहिब की मौत पर पाँच दिन का सोग मनाया।

ख़ान साहिब को उनकी इच्छा के अनुसार अफ़ग़ानिस्तान के जलालाबाद में दफ़नाया गया। उस वक़्त अफ़ग़ानिस्तान में जंग चल रही थी। अफ़गानों में उनकी इतनी इज़्ज़त थी कि उनको सपुर्द-ए-ख़ाक करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान हुकूमत और मुजाहिद्दीन, दोनों ने जंग रोक दी थी।

पाकिस्तान के पेशावर से चल कर ऐतिहासिक ख़ैबर दर्रे से होकर अफ़ग़ानिस्तान के जलालाबाद पहुँची उनकी शवयात्रा डुरंड लाइन के

दोनों तरफ़ बसे पश्तूनों को शान्ति और प्रेम का सन्देश देती हुई यह भी दिखा गई कि दोनों तरफ़ के पश्तून एक हैं।

अफ़ग़ानिस्तान के राष्ट्रपति मुहम्मद नजीबुल्लाह समेत 2 लाख से ज़्यादा लोगों ने उनकी अन्तिम क्रियाओं में हिस्सा लेकर युगपुरुष इस महामानव को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण की।

*****